अध्याय ९

भक्ति का कल्पवृक्ष

श्रील भक्तिविनाद ठाकुर ने अपने ग्रंथ *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में नवें अध्याय का सारांश निम्न प्रकार से दिया है। इस अध्याय में *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के लेखक ने "भक्ति के कल्प वृक्ष" के रूप में एक आलंकारिक उदाहरण की कल्पना की है। वे विश्वम्भर नामधारी चैतन्य महाप्रभु को इस वृक्ष को लगाने वाले (माली) मानते हैं, क्योंकि वही प्रमुख व्यक्ति हैं, जिन्होंने इसका भार अपने ऊपर लिया है। परम भोक्ता के रूप में उन्होंने इसके फलों का भोग स्वयं किया है और उन्हें बाँटा भी है। इस वृक्ष का बीज सर्वप्रथम चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि नवद्वीप में बोया गया, फिर यह वृक्ष पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) में लाया गया और उसके बाद वृन्दावन में। इसका बीज सर्वप्रथम श्रील माधवेन्द्र पुरी में फलित हुआ और फिर उनके शिष्य श्री ईश्वर पुरी में। बड़े ही आलंकारिक ढंग से बतलाया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृक्ष और वृक्ष का तना दोनों ही हैं। परमानन्द पुरी तथा अन्य आठ बड़े-बड़े संन्यासी इस वृक्ष की दूर-दूर तक फैलने वाली जड़ें हैं। इसके मुख्य तने से दो विशेष शाखाएँ निकलती हैं—अद्वैत प्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु और इन शाखाओं से अन्य शाखाएँ तथा उपशाखाएँ निकलती हैं। यह वृक्ष सारे जगत् को घेरे हुए है और इसके फल हर एक को वितरित होने हैं। इस तरह चैतन्य महाप्रभु-रूपी वृक्ष समग्र संसार को मोहने वाला है। ध्यान रहे कि यह आलंकारिक उदाहरण चैतन्य महाप्रभु के उद्देश्य की व्याख्या करने के निमित्त है।

तं श्रीमत्कृष्ण-चैतन्य-देवं वन्दे जगदगुरूम् ।
यस्यानुकम्पया श्वापि महाब्धिं सन्तरेत्सुखम् ॥ १॥

तं श्रीमत्कृष्ण-चैतन्य-देवं वन्दे जगद्गुरुम् ।
यस्यानुकम्पया श्वापि महाब्धिं सन्तरेत्सुखम् ॥ १॥

तम्—उनको; **श्रीमत्**—समग्र ऐश्वर्य से युक्त; **कृष्ण-चैतन्य-देवम्**—भगवान् कृष्ण चैतन्यदेव; **वन्दे**—मैं नमस्कार करता हूँ; **जगत्-गुरुम्**—जगद् गुरु; **यस्य**—जिनकी; **अनुकम्पया**—कृपा से; **श्वा अपि**—एक कुत्ता भी; **महा-अब्धिम्**—महासागर; **सन्तरेत्**—तैर सकता है; **सुखम्**—बिना कठिनाई के।

अनुवाद

मैं अखिल जगत् के गुरु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से एक कुत्ता भी महासागर को पार कर सकता है।

तात्पर्य

कभी-कभी देखा जाता है कि कुत्ता कुछ दूर तक पानी में तैर सकता है और फिर किनारे लौट आता है। किन्तु यहाँ पर यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण चैतन्य की कृपा से कुत्ता महासागर के आर-पार तैर सकता है। इसी प्रकार *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी अपने आपको असहाय बतलाते हुए कहते हैं कि उनमें अपनी खुद की कोई शक्ति नहीं है, किन्तु वैष्णवों तथा मदनमोहन विग्रह के माध्यम से व्यक्त हुई श्री चैतन्य की कृपा से वे दिव्य सागर को पार करके *श्रीचैतन्य-चरितामृत* प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं।

जय जय श्री-कृष्ण-चैतन्य गौरचन्द्र ।
जय जयाद्वैत जय जय नित्यानन्द ॥ २॥

जय जय श्री-कृष्ण-चैतन्य गौरचन्द्र ।
जय जयाद्वैत जय जय नित्यानन्द ॥ २॥

जय जय—जय जय; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **गौरचन्द्र**—जिनका नाम है गौरहरि; **जय जय**—जय जय; **अद्वैत**—अद्वैत गोसांइ की; **जय जय**—जय जय; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द की।

अनुवाद

उन श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो, जो गौरहरि कहलाते हैं! अद्वैताचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु की जय हो!

जय जय श्रीवासादि गौर-भक्त-गण ।
सर्वाभीष्ट-पूर्ति-हेतु याँहार स्मरण ॥ ३ ॥

जय जय श्रीवासादि गौर-भक्त-गण ।
सर्वाभीष्ट-पूर्ति-हेतु याँहार स्मरण ॥ ३ ॥

जय जय—जय जय; **श्रीवास-आदि**—श्रीवास तथा अन्य; **गौर-भक्त-गण**—चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों को; **सर्व-अभीष्ट**—सभी इच्छाओं; **पूर्ति**—पूर्ति; **हेतु**—के लिए; **याँहार**—जिनका; **स्मरण**—स्मरण।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर इत्यादि चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो! मैं अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उनके चरणकमलों का स्मरण करता हूँ।

तात्पर्य

यहाँ पर लेखक पंचतत्त्व की उसी पूजा-विधि का अनुसरण करते हैं, जिसका वर्णन आदिलीला के सातवें अध्याय में हो चुका है।

श्री-रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ ।
श्री-जीव, गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ ॥ ४ ॥

श्री-रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ ।
श्री-जीव, गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ ॥ ४ ॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **सनातन**—श्रील सनातन गोस्वामी; **भट्ट रघुनाथ**—श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी; **श्री-जीव**—श्री जीव गोस्वामी; **गोपाल-भट्ट**—श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी; **दास-रघुनाथ**—रघुनाथ दास गोस्वामी।

अनुवाद

मैं छहों गोस्वामियों—रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ—का भी स्मरण करता हूँ।

तात्पर्य

दिव्य साहित्य के लेखन की यही विधि है। जिस भावुक व्यक्ति में वैष्णव-गुण नहीं होते, वह दिव्य ग्रंथ नहीं लिख सकता। ऐसे अनेक मूर्ख हैं, जो कृष्ण-लीला को कला का विषय मानकर गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं के विषय में लिखते हैं या चित्र बनाते हैं और कभी-कभी तो वे अत्यन्त अश्लील ढंग से उन्हें प्रदर्शित करते हैं। वे मूर्ख भौतिक इन्द्रियतृप्ति में आनन्द लेते हैं, किन्तु जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना चाहता है, उसे ऐसे गन्दे साहित्य से अति सावधानी से बचना चाहिए। जब तक कोई कृष्ण तथा वैष्णवों का दास नहीं बनता, जिस प्रकार कि श्री चैतन्य महाप्रभु, उनके पार्षदों और शिष्यों को नमस्कार करते हुए कृष्णदास कविराज गोस्वामी अपने आपको प्रस्तुत करते हैं, तब तक उसे दिव्य साहित्य लिखने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

एसब-प्रसादे लिखि चैतन्य-लीला-गुण ।
जानि वा ना जानि, करि आपन-शोधन ॥५॥

एसब-प्रसादे लिखि चैतन्य-लीला-गुण ।
जानि वा ना जानि, करि आपन-शोधन ॥५॥

एसब—इन सब की; **प्रसादे**—कृपा से; **लिखि**—मैं लिखता हूँ; **चैतन्य**—चैतन्य महाप्रभु की; **लीला-गुण**—लीलाएँ और गुण; **जानि**—जानता हूँ; **वा**—अथवा; **ना**—नहीं; **जानि**—जानता; **करि**—करो; **आपन**—अपना; **शोधन**—शोधन, शुद्धि।

अनुवाद

इन सारे वैष्णवों तथा गुरुओं की कृपा से ही मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं और गुणों के बारे में लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। चाहे जानकर हो अथवा अनजाने में, मैं आत्मशुद्धि के लिए ही यह पुस्तक लिख रहा हूँ।

तात्पर्य

दिव्य ग्रंथ के लेखन का सम्पूर्ण सार यही है। मनुष्य को विनीत एवं शुद्ध प्रामाणिक वैष्णव होना चाहिए। उसे प्रतिष्ठा के लिए नहीं, अपितु आत्मशुद्धि के लिए दिव्य साहित्य लिखना चाहिए। भगवान् की लीलाओं के विषय में

लिखकर वह भगवान् की प्रत्यक्ष संगति प्राप्त करता है। उसे यह महत्त्वाकांक्षा नहीं होनी चाहिए कि "मैं महान् लेखक बन जाऊँगा और लेखक के रूप में विख्यात होऊँगा।" ये तो भौतिक इच्छाएँ हैं। व्यक्ति को आत्मशुद्धि के लिए लिखना चाहिए—चाहे वह प्रकाशित हो या अप्रकाशित ही रहे। यदि सचमुच वह लिखने में निष्ठावान् है, तो उसकी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी। कोई महान् लेखक बनता है कि नहीं, यह संयोग की बात है। दिव्य साहित्य लिखने का प्रयास भौतिक नाम तथा यश के लिए नहीं करना चाहिए।

মালা-কারঃ স্বয়ং কৃষ্ণ-প্রেমামর-তরুঃ স্বয়ম্ ।
দাতা ভোক্তা তৎফলানাং যস্তং চৈতন্যমাশ্রয়ে ॥৬॥

माला-कारः स्वयं कृष्ण-प्रेमामर-तरुः स्वयम् ।
दाता भोक्ता तत्फलानां यस्तं चैतन्यमाश्रये ॥ ६ ॥

माला-कारः—माली; **स्वयम्**—स्वयं; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **प्रेम**—प्रेम; **अमर**—दिव्य; **तरुः**—वृक्ष; **स्वयम्**—स्वयं; **दाता**—दाता; **भोक्ता**—भोक्ता; **तत्-फलानाम्**—उस वृक्ष के सभी फलों का; **यः**—वह जो; **तम्**—उनको; **चैतन्यम्**—चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु का; **आश्रये**—मैं आश्रय लेता हूँ।

अनुवाद

मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण लेता हूँ, जो स्वयं कृष्ण-प्रेम रूपी वृक्ष हैं, इसके माली हैं और इसके फलों के प्रदाता तथा भोक्ता दोनों हैं।

প্রভু কহে, আমি 'বিশ্বম্ভর' নাম ধরি ।
নাম সার্থক হয়, যদি প্রেমে বিশ্ব ভরি ॥৭॥

प्रभु कहे, आमि 'विश्वम्भर' नाम धरि ।
नाम सार्थक हय, यदि प्रेमे विश्व भरि ॥ ७ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **आमि**—मैं; **विश्वम्भर**—विश्वम्भर; **नाम**—नाम; **धरि**—स्वीकार करता हूँ; **नाम**—नाम; **सार्थक**—सार्थक; **हय**—होता है; **यदि**—यदि; **प्रेमे**—भगवत्प्रेम में; **विश्व**—सारा ब्रह्माण्ड; **भरि**—भरा जाना।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने सोचा, "मेरा नाम विश्वम्भर अर्थात् 'अखिल ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला' है। यह नाम तभी सार्थक बनेगा, यदि मैं अखिल ब्रह्माण्ड को भगवत्प्रेम से भर दूँ।"

এত চিন্তি' লৈলা প্রভু মালাকার-ধর্ম ।
নবদ্বীপে আরম্ভিলা ফলোদ্যান-কর্ম ॥ ৮॥

এত চিন্তি' লৈলা প্রভু মালাকার-ধর্ম ।
নবদ্বীপে আরম্ভিলা ফলোদ্যান-কর্ম ॥ ৮॥

এত চিন্তি'—इस प्रकार सोचकर; **लैला**—ले लिया; **प्रभु**—महाप्रभु; **माला-कार-धर्म**—माली का कर्तव्य; **नवद्वीपे**—नवद्वीप में; **आरम्भिला**—आरम्भ किया; **फल-उद्यान**—बाग; **कर्म**—कर्म।

अनुवाद

इस प्रकार सोचते हुए उन्होंने माली का कार्य स्वीकार किया और नवद्वीप में एक उद्यान (बगीचा) लगाना प्रारम्भ कर दिया।

শ্রী-চৈতন্য মালাকার পৃথিবীতে আনি' ।
ভক্তি-কল্পতরু রোপিলা সিঞ্চি' ইচ্ছা-পানি ॥ ৯॥

শ্রী-চৈতন্য মালাকার পৃথিবীতে আনি' ।
ভক্তি-কল্পতরু রোপিলা সিঞ্চি' ইচ্ছা-পানি ॥ ৯॥

শ্রী-চৈতন্য—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; **माला-कार**—माली; **पृथिवीते**—पृथ्वी पर; **आनि'**—लाकर; **भक्ति-कल्प-तरु**—भक्तिरूपी कल्पतरु; **रोपिला**—बोया; **सिञ्चि'**—सींचा; **इच्छा**—इच्छा; **पानि**—पानी।

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु भक्ति-रूपी कल्पवृक्ष को इस पृथ्वी पर ले आये और स्वयं इसके माली बने। उन्होंने बीज बोया और उसे अपनी इच्छा-रूपी जल से सींचा।

तात्पर्य

अनेक स्थलों पर भक्ति की तुलना लता से की गई है। मनुष्य को अपने

हृदय के भीतर भक्ति-लता का बीज बोना होता है। ज्यों-ज्यों वह नियमित रूप से श्रवण और कीर्तन करता है, यह बीज उगकर धीरे-धीरे परिपक्व वृक्ष बनता है और फिर उसमें भगवत्प्रेम रूपी भक्ति का फल लगता है, जिसे माली बिना व्यवधान के भोग सकता है।

জয় শ্রী মাধবপুরী কৃষ্ণ-প্রেম-পূর ।
ভক্তি-কল্পতরুর তেঁহো প্রথম অঙ্কুর ॥ ১০॥

जय श्री माधवपुरी कृष्ण-प्रेम-पूर ।
भक्ति-कल्पतरुर तेंहो प्रथम अङ्कुर ॥ १०॥

जय—जय जय; **श्री माधव-पुरी**—श्री माधवेन्द्रपुरी की; **कृष्ण-प्रेम-पूर**—कृष्ण-प्रेम के आगार; **भक्ति-कल्प-तरुर**—भक्ति रूपी कल्पतरु; **तेंहो**—वे हैं; **प्रथम**—प्रथम; **अङ्कुर**—अंकुर, पौधा।

अनुवाद

कृष्ण-भक्ति के आगार श्री माधवेन्द्र पुरी की जय हो! वे भक्ति के कल्पवृक्ष हैं और उन्हीं में भक्ति का प्रथम बीज अंकुरित हुआ।

तात्पर्य

श्री माधवेन्द्र पुरी श्री माधव पुरी के नाम से भी जाने जाते हैं। वे मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित थे और एक प्रख्यात संन्यासी थे। श्री चैतन्य महाप्रभु शिष्यानुक्रम में श्री माधवेन्द्र पुरी से तीसरे क्रम में शिष्य थे। मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में पूजा-विधि कर्मकाण्ड से बोझिल थी, जिसमें भगवत्प्रेम का नामोनिशान लगभग न के बराबर था। श्री माधवेन्द्र पुरी उस गुरु-शिष्य परम्परा में प्रथम व्यक्ति थे, जिनमें भगवत्प्रेम के लक्षण प्रकट हुए और जिन्होंने एक कविता लिखी जिसकी प्रथम पंक्ति थी—*अयि दीनदयार्द्रनाथ!* इसी कविता में चैतन्य महाप्रभु के भगवत्प्रेम के अनुशीलन का बीज निहित है।

শ্রী-ঈশ্বরপুরী-রূপে অঙ্কুর পুষ্ট হৈল ।
আপনে চৈতন্য-মালী স্কন্ধ উপজিল ॥ ১১॥

श्री-ईश्वरपुरी-रूपे अङ्कुर पुष्ट हैल ।
आपने चैतन्य-माली स्कन्ध उपजिल ॥ ११ ॥

श्री-ईश्वर-पुरी—श्री ईश्वर पुरी; **रूपे**—रूप में; **अङ्कुर**—बीज; **पुष्ट**—पुष्ट; **हैल**—हो गया; **आपने**—स्वयं; **चैतन्य-माली**—श्री चैतन्य महाप्रभु नामक माली; **स्कन्ध**—तना; **उपजिल**—विकसित हो गया।

अनुवाद

इसके बाद भक्ति का बीज श्री ईश्वरपुरी के रूप में अंकुरित हुआ और फिर श्री चैतन्य महाप्रभु जो स्वयं माली थे, उस भक्ति रूपी वृक्ष का मुख्य तना बने।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने *अनुभाष्य* में लिखते हैं कि "श्री ईश्वरपुरी कुमारहट्ट के निवासी थे, जहाँ अब कामरहट्ट नामक रेलवे स्टेशन है। पास ही हालिसहर नामक एक अन्य स्टेशन है, जो कलकत्ता के पूर्वी विभाग के पूर्वी रेलवे से सम्बन्धित है।"

ईश्वरपुरी का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे श्रील माधवेन्द्र पुरी के सर्वाधिक प्रिय शिष्य थे। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* के अन्तिम भाग के आठवें अध्याय में श्लोक २८-३१ में कहा गया है :

ईश्वरपुरी गोसाञि करे श्रीपाद सेवन
स्वहस्ते करेन मलमूत्रादि मार्जन।
निरन्तर कृष्णनाम कराय स्मरण
कृष्णनाम कृष्णलीला शुनाय अनुक्षण।
तुष्ट हञा पुरी तारै कैल आलिङ्गन
वर दिला कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन।
सेइ हइते ईश्वरपुरी प्रेमेर सागर

"श्री माधवेन्द्र पुरी अपने जीवन के अन्तिम समय में अशक्त हो गये थे और हिल-डुल नहीं सकते थे। ईश्वर पुरी पूर्णरूपेण उनकी सेवा करते थे, यहाँ तक कि उनका मलमूत्र भी वे स्वयं साफ करते थे। ईश्वर पुरी ने सदैव हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके और श्री माधवेन्द्र पुरी को उनके अन्तिम समय में

भगवान् कृष्ण की लीलाओं का स्मरण कराकर उनके शिष्यों में से सर्वाधिक सेवा की। इस तरह माधवेन्द्र पुरी ने अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया, 'हे प्रिय बालक, भगवान् कृष्ण से मैं यही विनती कर सकता हूँ कि वे तुम पर प्रसन्न हों।' इस प्रकार ईश्वर पुरी अपने गुरु श्री माधवेन्द्र पुरी की कृपा से भगवत्प्रेम के महासागर में महान् भक्त बन गये।" श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अपने *गुर्वष्टक* में लिखते हैं— *यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि*—"गुरु की कृपा से ही कृष्ण की कृपा का वर मिलता है। कोई गुरु की कृपा के बिना कुछ भी उन्नति नहीं कर सकता।" गुरु की कृपा से ही मनुष्य पूर्ण बनता है, जैसाकि इस उदाहरण से स्पष्ट है। वैष्णव की रक्षा सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् करते हैं, किन्तु यदि वह अशक्त प्रतीत होता है, तो इससे उसके शिष्यों को सेवा करने का अवसर मिलता है। ईश्वर पुरी ने अपनी सेवा से गुरु को प्रसन्न कर लिया और अपने गुरु के आशीर्वाद से वे इतने महान् पुरुष बन गये कि भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने उनको अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया।

श्रील ईश्वर पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु को दीक्षा देने के पूर्व वे नवद्वीप गये थे और गोपीनाथ आचार्य के घर कुछ महीने रहे थे। तभी चैतन्य महाप्रभु का उनसे परिचय हुआ था। कहा जाता है कि तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु को *कृष्णलीलामृत* नामक अपनी पुस्तक सुनाकर उनकी सेवा किया करते थे। इसका वर्णन *श्री चैतन्य-भागवत* (आदिखण्ड, ग्यारहवाँ अध्याय) में मिलता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दूसरों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया कि किस प्रकार गुरु का आज्ञाकारी शिष्य बना जाए। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, ईश्वर पुरी के जन्मस्थान कुमारहट्ट गये और उनके जन्म-स्थल से कुछ मिट्टी लेते आये, जिसे वे सावधानी से रखते थे और नित्य उसमें से कुछ अंश प्रतिदिन खाया करते थे। *चैतन्य-भागवत,* आदिखण्ड के सत्रहवें अध्याय में इसका वर्णन हुआ है। यह अब भक्तों के लिए प्रथा बन गई है कि भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के दृष्टान्त का अनुसरण करते हुए वहाँ जाते हैं और उस स्थान से कुछ मिट्टी लाते हैं।

निजाचिन्त्य-शक्त्ये माली हञा स्कन्ध हय ।
सकल शाखार सेई स्कन्ध मूलाश्रय ॥ १२॥

निजाचिन्त्य-शक्त्ये माली हञा स्कन्ध हय ।
सकल शाखार सेइ स्कन्ध मूलाश्रय ॥ १२॥

निज—उनकी अपनी; **अचिन्त्य**—अचिन्त्य; **शक्त्ये**—शक्ति से; **माली**—माली; **हञा**—होकर; **स्कन्ध**—तना; **हय**—हो गये; **सकल**—सब; **शाखार**—अन्य शाखाओं का; **सेइ**—वह; **स्कन्ध**—तना; **मूल-आश्रय**—मूल आधार।

अनुवाद

अपनी अचिन्त्य शक्तियों के कारण महाप्रभु एकसाथ माली, तना तथा शाखाएँ बने।

परमानन्द पुरी, आर केशव भारती ।
ब्रह्मानन्द पुरी, आर ब्रह्मानन्द भारती ॥ १३॥
विष्णु-पुरी, केशव-पुरी, पुरी कृष्णानन्द ।
श्री-नृसिंहतीर्थ, आर पुरी सुखानन्द ॥ १४॥
एइ नव मूल निकसिल वृक्ष-मूले ।
एइ नव मूले वृक्ष करिल निश्चले ॥ १५॥

परमानन्द पुरी, आर केशव भारती ।
ब्रह्मानन्द पुरी, आर ब्रह्मानन्द भारती ॥ १३॥
विष्णु-पुरी, केशव-पुरी, पुरी कृष्णानन्द ।
श्री-नृसिंहतीर्थ, आर पुरी सुखानन्द ॥ १४॥
एइ नव मूल निकसिल वृक्ष-मूले ।
एइ नव मूले वृक्ष करिल निश्चले ॥ १५॥

परमानन्द पुरी—परमानन्द पुरी; **आर**—और; **केशव भारती**—केशव भारती; **ब्रह्मानन्द पुरी**—ब्रह्मानन्द पुरी; **आर**—और; **ब्रह्मानन्द भारती**—ब्रह्मानन्द भारती; **विष्णु-पुरी**—विष्णु पुरी; **केशव-पुरी**—केशव पुरी; **पुरी कृष्णानन्द**—कृष्णानन्द पुरी; **श्री-नृसिंह-तीर्थ**—श्री नृसिंह तीर्थ; **आर**—और; **पुरी सुखानन्द**—सुखानन्द पुरी; **एइ नव**—ये सब नौ; **मूल**—जड़ें; **निकसिल**—फलीभूत हुईं; **वृक्ष-मूले**—वृक्ष के तने में; **एइ नव मूले**—इन नौ जड़ों में; **वृक्ष**—वृक्ष; **करिल निश्चले**—अत्यन्त मजबूत हो गया।

अनुवाद

श्री परमानन्द पुरी, केशव भारती, ब्रह्मानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती, श्री विष्णु पुरी, केशव पुरी, कृष्णानन्द पुरी, श्री नृसिंह तीर्थ तथा सुखानन्द पुरी—ये नौ संन्यासी वे जड़ें हैं, जो उस वृक्ष के तने से फूटीं। इस तरह इन नौ जड़ों के बल पर वह वृक्ष दृढ़ता से खड़ा रहा।

तात्पर्य

परमानन्द पुरी : परमानन्द पुरी उत्तरप्रदेश के त्रिहुत जिले के एक ब्राह्मण परिवार के थे। माधवेन्द्र पुरी इनके गुरु थे। माधवेन्द्र पुरी से सम्बन्ध होने के फलस्वरूप परमानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु को बहुत प्रिय थे। *चैतन्य-भागवत,* अन्त्यखण्ड में निम्नलिखित कथन है :

संन्यासीर मध्ये ईश्वरेर प्रियपात्र
आर नाहि एक पुरी गोसाञि से मात्र
दामोदरस्वरूप परमानन्दपुरी
संन्यासि पार्षदे एइ दुइ अधिकारी
निरवधि निकटे थाकेन दुइजन
प्रभुर संन्यासे करे दण्डेर ग्रहण
पुरी ध्यानपर दामोदरेर कीर्तन
यतप्रीति ईश्वरेर पुरी-गोसाञिरे
दामोदर-स्वरूपेरेओ तत प्रीति करे।

"माधवेन्द्र पुरी को संन्यासी शिष्यों में से ईश्वर पुरी तथा परमानन्द पुरी अत्यन्त प्रिय थे। इस प्रकार संन्यासी स्वरूप दामोदर की तरह परमानन्द पुरी भी श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे और उनके नित्य पार्षद थे। जब चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास लिया, तब परमानन्द पुरी ने उन्हें *दण्ड* (डण्डा) प्रदान किया। परमानन्द पुरी सदैव ध्यान में और श्री स्वरूप दामोदर हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में मग्न रहते थे। जिस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु अपने गुरु श्री ईश्वर पुरी का पूरा आदर करते थे, उसी तरह वे परमानन्द पुरी तथा स्वरूप दामोदर का भी आदर करते थे।" *चैतन्य-भागवत* (अन्त्य खण्ड, अध्याय ३) में वर्णन

है कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले पहल परमानन्द पुरी को देखा, तो उन्होंने निम्नलिखित रूप में अपने भाव व्यक्त किये :

आजि धन्य लोचन, सफल आजि जन्म
सफल आमार आजि हैल सर्वधर्म।
प्रभु बले आजि मोर सफल संन्यास
आजि माधवेन्द्र मोरे हइला प्रकाश।

"आज मेरी आँखें, मेरा मन, मेरे धार्मिक कृत्य तथा मेरा संन्यास स्वीकार करना—ये सभी धन्य हो गये हैं, क्योंकि मेरे सामने आज परमानन्द पुरी के रूप में माधवेन्द्र पुरी प्रकट हुए हैं।" *चैतन्य-भागवत* में आगे कहा गया है :

कथोक्षणे अन्योऽन्ये करेन प्रणाम।
परमानन्दपुरी चैतन्येर प्रियधाम॥

"इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने परम प्रिय परमानन्द पुरी से सादर नमस्कार का आदान-प्रदान किया।" परमानन्द पुरी ने जगन्नाथ-मन्दिर के पश्चिमी भाग के पीछे एक छोटा-सा मठ स्थापित किया, जहाँ उन्होंने जल के लिए एक कुआँ खुदवाया। लेकिन पानी खारा था, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् जगन्नाथ से प्रार्थना की कि वे गंगाजल को इस कुएँ में प्रवाहित करके इसे मीठा बना दें। जब भगवान् जगन्नाथ ने प्रार्थना स्वीकार कर ली, तो महाप्रभु ने सारे भक्तों से कहा कि आज से परमानन्द पुरी के कुएँ के जल को गंगाजल के समान मानें, क्योंकि भक्तों को इसका जल पीने या इससे नहाने से गंगास्नान करने या गंगाजल-पान करने जैसा ही लाभ मिलेगा। ऐसा व्यक्ति निश्चय ही शुद्ध भगवत्प्रेम का विकास करेगा। *चैतन्य भागवत* (अन्त्य ३.२५५) में ऐसा कहा गया है :

प्रभु बले आमि ये आछिये पृथिवीते।
निश्चयै जानिह पुरीगोसाञि प्रीते॥

"श्री चैतन्य महाप्रभु कहा करते थे, "मैं इस दुनिया में केवल श्री परमानन्द पुरी के सर्वोत्कृष्ट व्यवहार के कारण ही रह रहा हूँ।" *गौरगणोद्देश दीपिका* (श्लोक ११८) का कथन है—*पुरी श्री परमानन्दो य आसीद् उद्धवः पुरा*—"परमानन्द पुरी श्री उद्धव ही थे।" उद्धव भगवान् कृष्ण के मित्र तथा चाचा के पुत्र थे और

चैतन्य-लीला में यही उद्धव श्री चैतन्य महाप्रभु के मित्र तथा गुरु-शिष्य परम्परा में उनके चाचा-गुरु हुए।

केशव भारती : सरस्वती, भारती तथा पुरी सम्प्रदाय दक्षिण भारत के शृंगेरी मठ से सम्बन्धित हैं और श्री केशव भारती, जो भारती सम्प्रदाय के थे, उस समय कटवा स्थित मठ में रह रहे थे। कुछ प्रामाणिक मतों के अनुसार यद्यपि केशव भारती का सम्बन्ध शंकर सम्प्रदाय से था, किन्तु पहले वे एक वैष्णव द्वारा दीक्षित हो चुके थे। माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा प्राप्त करने के कारण वे वैष्णव माने जाते हैं, क्योंकि कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने माधवेन्द्र पुरी से संन्यास लिया था। खाटुण्डी नामक गाँव में, जो बर्दवान जिले में कान्दरा डाकखाने के अन्तर्गत है, केशव भारती द्वारा आरम्भ की गई विग्रह-पूजा और मन्दिर आज भी विद्यमान है। उस मठ के प्रबन्धकों के अनुसार पुजारी केशव भारती के वंशज हैं और कुछ लोगों के अनुसार विग्रह के पुजारी केशव भारती के पुत्रों के वंशज हैं। गृहस्थ जीवन में उन्हें दो पुत्र हुए—निशापति तथा उषापति। निशापति के वंश का ही एक सदस्य श्री नकड़िचन्द्र विद्यारत्न नामक ब्राह्मण उस मन्दिर का पुजारी था, जब श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती वहाँ गये थे। कुछ लोगों के अनुसार इस मन्दिर के पुजारी केशव भारती के भाई के वंशज हैं। अन्य मत के लोग उन्हें माधव भारती के वंशज मानते हैं, जो केशव भारती के एक अन्य शिष्य थे। माधव भारती के शिष्य बलभद्र भी बाद में भारती सम्प्रदाय के संन्यासी बने। उनके गृहस्थ जीवन में उनके मदन तथा गोपाल दो पुत्र थे। मदन का पारिवारिक उपनाम भारती था, जो औरिया गाँव में रहता था और गोपाल का पारिवारिक उपनाम ब्रह्मचारी था, जो देण्डुड गाँव में रहता था। इन दोनों वंशों के अनेक वंशज आज भी जीवित हैं।

गौरगणोद्देश-दीपिका (श्लोक ५२) में कहा गया है :

मथुरायां यज्ञसूत्रं पुरा कृष्णाय यो मुनिः।
ददौ सान्दीपनिः सोऽभूदद्य केशवभारती॥

"सान्दीपनि मुनि, जिन्होंने पुराकाल में कृष्ण तथा बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार कराया था, बाद में वे ही केशव भारती बने।" उन्होंने ही श्री चैतन्य महाप्रभु को संन्यास दिया। *गौरगणोद्देश-दीपिका* (श्लोक ११७) में केशव

भारती के बारे में एक अन्य कथन भी है—*इति केचित् प्रभाषन्तेऽक्रूरः केशवभारती*—"कुछ प्रमाणों के अनुसार केशव भारती अक्रूर के अवतार हैं।" केशव भारती ने १४३२ शकाब्द (सन् १५१० ई.) में श्री चैतन्य महाप्रभु को कटवा में संन्यास दिया। इसका उल्लेख *वैष्णवमञ्जूषा* (भाग २) में हुआ है।

ब्रह्मानन्द पुरी : जब श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप में कीर्तन करते थे, उस समय से श्री ब्रह्मानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षद थे। जगन्नाथ पुरी में भी वे चैतन्य महाप्रभु महाप्रभु के साथ रहे। यहाँ पर ध्यान देना होगा कि ब्रह्मानन्द नाम न केवल मायावादी संन्यासियों का होता है, अपितु वैष्णव संन्यासियों का भी होता है। हमारे एक मूर्ख गुरु-भाई ने हमारे संन्यासी ब्रह्मानन्द स्वामी की यह कहकर आलोचना की कि यह तो मायावादी नाम है। वह मूर्ख यह भी नहीं जानता था कि ब्रह्मानन्द केवल निर्विशेष ब्रह्म का ही सूचक नहीं होता है। परब्रह्म या परम ब्रह्म कृष्ण हैं। अतएव कृष्ण का भक्त भी ब्रह्मानन्द कहला सकता है। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि ब्रह्मानन्द पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख संन्यासी-पार्षदों में से एक थे।

ब्रह्मानन्द भारती : ब्रह्मानन्द भारती श्रीकृष्ण चैतन्य से मिलने जगन्नाथ धाम गये। उस समय वे अपने शरीर को ढकने के लिए केवल मृगचर्म पहनते थे और चैतन्य महाप्रभु ने अप्रत्यक्ष रूप से इंगित किया था कि उन्हें उनका मृगचर्म पहनना अच्छा नहीं लगता। अतएव ब्रह्मानन्द भारती मृगचर्म पहनना त्यागकर वैष्णव संन्यासियों जैसा केसरिया (गेरुआ) कौपीन पहनने लगे। वे कुछ काल तक श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ जगन्नाथ पुरी में रहे।

मध्य-मूल परमानन्द पूरी महा-धीर ।
अष्ट दिके अष्ट मूल वृक्ष कैल स्थिर ॥ १६॥

मध्य-मूल परमानन्द पुरी महा-धीर ।
अष्ट दिके अष्ट मूल वृक्ष कैल स्थिर ॥ १६॥

मध्य-मूल—बीच की जड़; **परमानन्द पुरी**—परमानन्द पुरी; **महा-धीर**—महा गम्भीर; **अष्ट दिके**—आठ दिशाओं में; **अष्ट मूल**—आठ जड़ें; **वृक्ष**—वृक्ष; **कैल स्थिर**—स्थिर हो गया।

अनुवाद

धीर गम्भीर परमानन्द पुरी मुख्य (केन्द्रीय) जड़ बने और आठों दिशाओं में अन्य आठ जड़ों समेत श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी वृक्ष सुस्थिर हो गया।

स्कन्धेर उपरे बहु शाखा उपजिल ।
उपरि उपरि शाखा असङ्ख्य हइल ॥ १७॥
स्कन्धेर उपरे बहु शाखा उपजिल ।
उपरि उपरि शाखा असङ्ख्य हइल ॥ १७॥

स्कन्धेर उपरे—तने के ऊपर; **बहु शाखा**—अनेक शाखाएँ; **उपजिल**—उग पड़ीं; **उपरि उपरि**—और उनके ऊपर; **शाखा**—अन्य शाखाएँ; **असङ्ख्य**—असंख्य; **हइल**—फलीभूत हुईं।

अनुवाद

तने से अनेक शाखाएँ फूटीं और उनके भी ऊपर अनेक उपशाखाएँ निकलीं।

विश विश शाखा करि' एक एक मण्डल ।
महा-महा-शाखा छाइल ब्रह्माण्ड सकल ॥ १८॥
विश विश शाखा करि' एक एक मण्डल ।
महा-महा-शाखा छाइल ब्रह्माण्ड सकल ॥ १८॥

विश विश—बीस, बीस; **शाखा**—शाखाएँ; **करि'**—समूह बनाकर; **एक एक मण्डल**—एक एक झुंड (मंडल) बनाते हैं; **महा-महा-शाखा**—बड़ी शाखाएँ; **छाइल**—ढककर; **ब्रह्माण्ड**—सारे ब्रह्माण्ड; **सकल**—सभी।

अनुवाद

इस तरह चैतन्य रूपी वृक्ष की शाखाओं से एक गुच्छा या समाज बना और बड़ी-बड़ी शाखाएँ सारे ब्रह्माण्ड में छा गईं।

तात्पर्य

हमारा अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ चैतन्य-वृक्ष की ही एक शाखा है।

एकैक शाखाते उपशाखा शत शत ।
यत उपजिल शाखा के गणिबे कत ॥ १९॥

एकैक शाखाते उपशाखा शत शत ।
यत उपजिल शाखा के गणिबे कत ॥ १९॥

एकैक—प्रत्येक शाखा; **शाखाते**—शाखा में; **उपशाखा**—उपशाखाएँ; **शत शत**—सौ-सौ; **यत**—सब; **उपजिल**—उग गईं; **शाखा**—शाखाएँ; **के**—कौन; **गणिबे**—गिन सकता है; **कत**—कितनी।

अनुवाद

हर शाखा से सैकड़ों उपशाखाएँ फूटीं। इस तरह कितनी शाखाएँ निकलीं, इसकी गिनती कोई नहीं कर सकता।

मुख्य मुख्य शाखा-गणेर नाम अगणन ।
आगे त' करिब, शुन वृक्षेर वर्णन ॥२०॥

मुख्य मुख्य शाखा-गणेर नाम अगणन ।
आगे त' करिब, शुन वृक्षेर वर्णन ॥ २०॥

मुख्य मुख्य—मुख्य-मुख्य; **शाखा-गणेर**—शाखाओं का; **नाम**—नाम; **अगणन**—अनगिनत; **आगे**—आगे, बाद में; **त' करिब**—मैं करूँगा; **शुन**—कृपया सुनें; **वृक्षेर वर्णन**—चैतन्य वृक्ष का वर्णन।

अनुवाद

मैं इन असंख्य शाखाओं में से सर्वप्रमुख शाखाओं का नाम गिनाने का प्रयत्न करूँगा। कृपया चैतन्य-वृक्ष का वर्णन सुनें।

वृक्षेर उपरे शाखा हैल दुई स्कन्ध ।
एक 'अद्वैत' नाम, आर 'नित्यानन्द' ॥२१॥

वृक्षेर उपरे शाखा हैल दुइ स्कन्ध ।
एक 'अद्वैत' नाम, आर 'नित्यानन्द' ॥ २१॥

वृक्षेर—वृक्ष के; **उपरे**—ऊपर; **शाखा**—शाखा; **हैल**—हो गई; **दुइ**—दो; **स्कन्ध**—तने; **एक**—एक; **अद्वैत**—श्री अद्वैत प्रभु; **नाम**—नाम की; **आर**—और; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

वृक्ष के ऊपरी तने के दो भाग हो गये। एक तने का नाम श्री अद्वैत प्रभु था और दूसरे का श्री नित्यानन्द प्रभु।

सेई दुई-स्कन्धे बहु शाखा उपजिल ।
तार उपशाखा-गणे जगच्छाइल ॥२२॥

सेइ दुइ-स्कन्धे बहु शाखा उपजिल ।
तार उपशाखा-गणे जगत्छाइल ॥ २२॥

सेइ—वह; **दुइ-स्कन्धे**—दो तनों में; **बहु**—बहुत; **शाखा**—शाखाएँ; **उपजिल**—उग गईं; **तार**—उनका; **उपशाखा-गणे**—उपशाखाएँ; **जगत्**—सारा जगत्; **छाइल**—ढक गया।

अनुवाद

इन दोनों तनों से अनेक शाखाएँ एवं उपशाखाएँ उत्पन्न हुईं, जो सारे जगत् पर छा गईं।

बड़ शाखा, उपशाखा, तार उपशाखा ।
यत उपजिल तार के करिबे लेखा ॥२३॥

बड़ शाखा, उपशाखा, तार उपशाखा ।
यत उपजिल तार के करिबे लेखा ॥ २३॥

बड़ शाखा—बड़ी शाखाएँ; **उपशाखा**—उपशाखाएँ; **तार**—उनकी; **उपशाखा**—उपशाखाएँ; **यत**—वे सब; **उपजिल**—उग गईं; **तार**—उनकी; **के**—कौन; **करिबे**—गिन सकता है; **लेखा**—या लिख सकता है।

अनुवाद

ये शाखाएँ तथा उपशाखाएँ और उनकी भी उपशाखाएँ इतनी अधिक हो गईं कि उन सबके विषय में लिख पाना असम्भव है।

शिष्य, प्रशिष्य, आर उपशिष्य-गण ।
जगत्व्यापिल तार नाहिक गणन ॥२४॥

शिष्य, प्रशिष्य, आर उपशिष्य-गण ।
जगत्व्यापिल तार नाहिक गणन ॥ २४॥

शिष्य—शिष्य; **प्रशिष्य**—शिष्यों के शिष्य; **आर**—और; **उपशिष्य-गण**—प्रशंसक; **जगत्**—सारा जगत्; **व्यापिल**—फैल गये; **तार**—उसकी; **नाहिक**—कोई नहीं है; **गणन**—गिनती।

अनुवाद

इस तरह शिष्य, उनके शिष्य और उन सबके प्रशंसक सारे जगत् में फैल गये। इन सबको गिना पाना सम्भव नहीं है।

उडुम्बर-वृक्ष येन फले सर्व अङ्गे ।
एइ मत भक्ति-वृक्षे सर्वत्र फल लागे ॥ २५ ॥

उड़ुम्बर-वृक्ष येन फले सर्व अङ्गे ।
एइ मत भक्ति-वृक्षे सर्वत्र फल लागे ॥ २५ ॥

उड़ुम्बर-वृक्ष—एक बड़ा अंजीर का वृक्ष; **येन**—जैसे; **फले**—फल उगते हैं; **सर्व**—सब; **अङ्गे**—पूरे शरीर पर; **एइ**—यह; **मत**—की तरह; **भक्ति-वृक्षे**—भक्ति-वृक्ष; **सर्वत्र**—सर्वत्र; **फल**—फल; **लागे**—लगते हैं।

अनुवाद

जिस प्रकार विशाल अंजीर वृक्ष में सर्वत्र फल लगते हैं, उसी तरह भक्ति-वृक्ष के प्रत्येक अंग में फल लगे।

तात्पर्य

यह भक्ति-वृक्ष इस भौतिक जगत् का वृक्ष नहीं है। यह आध्यात्मिक जगत् में उगता है, जहाँ शरीर के विभिन्न अंगों में अन्तर नहीं होता। यह एक प्रकार से चीनी के वृक्ष के समान है, जिसके किसी भी भाग का आस्वादन किया जाए, वह सर्वदा मीठा ही लगेगा। भक्ति-वृक्ष में अनेक प्रकार की शाखाएँ, पत्तियाँ और फल होते हैं, किन्तु वे सब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा के लिए होते हैं। भक्ति की नौ भिन्न-भिन्न विधियाँ हैं (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्*), किन्तु ये सभी भगवान् की सेवा के निमित्त हैं। अतएव चाहे कोई श्रवण करे, कीर्तन करे, स्मरण करे या पूजा करे, उसके कृत्यों का एक जैसा ही फल मिलेगा। इनमें से कौन-सी विधि किसी भक्त के लिए उचित होगी, यह उसकी रुचि पर निर्भर करेगा।

মূল-স্কন্ধের শাখা আর উপশাখা-গণে ।
লাগিলা যে প্রেম-ফল,—অমৃতকে জিনে ॥২৬॥

मूल-स्कन्धेर शाखा आर उपशाखा-गणे ।
लागिला ये प्रेम-फल,—अमृतके जिने ॥ २६ ॥

मूल-स्कन्धेर—बड़े तने की; **शाखा**—शाखाएँ; **आर**—और; **उपशाखा-गणे**—उपशाखाएँ; **लागिला**—जैसे लगी थी; **ये**—जो; **प्रेम-फल**—प्रेमफल; **अमृतके जिने**—ऐसा फल अमृत को भी मात करता है।

अनुवाद

चूँकि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु मूल तना थे, अतएव शाखाओं तथा उपशाखाओं में जो फल लगे, उनका स्वाद अमृत से भी बढ़कर था।

পাকিল যে প্রেম-ফল অমৃত-মধুর ।
বিলায় চৈতন্য-মালী, নাহি লয় মূল ॥২৭॥

पाकिल ये प्रेम-फल अमृत-मधुर ।
विलाय चैतन्य-माली, नाहि लय मूल ॥ २७ ॥

पाकिल—पके हुए; **ये**—वे; **प्रेम-फल**—भगवत्प्रेम का फल; **अमृत**—अमृत समान; **मधुर**—मधुर; **विलाय**—बाँटते हैं; **चैतन्य-माली**—माली के रूप में चैतन्य महाप्रभु; **नाहि**—नहीं; **लय**—लेते; **मूल**—मूल्य, कीमत।

अनुवाद

फल पकते गये और मीठे तथा अमृतमय हो गये। माली श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें कोई मूल्य माँगे बिना ही वितरित कर दिया।

ত্রি-জগতে যত আছে ধন-রত্নমণি ।
এক-ফলের মূল্য করি' তাহা নাহি গণি ॥২৮॥

त्रि-जगते यत आछे धन-रत्नमणि ।
एक-फलेर मूल्य करि' ताहा नाहि गणि ॥ २८ ॥

त्रि-जगते—तीनों जगतों में; **यत**—जितना; **आछे**—है; **धन-रत्न-मणि**—सम्पत्ति और धन; **एक-फलेर**—एक फल का; **मूल्य**—मूल्य; **करि'**—हिसाब करके; **ताहा**—वह; **नाहि**—नहीं; **गणि**—गिनके।

अनुवाद

भक्ति के ऐसे एक अमृतमय फल के मूल्य की बराबरी तीनों लोक की सारी सम्पदा भी नहीं कर सकती।

मागे वा ना मागे केह, पात्र वा अपात्र ।
इहार विचार नाहि जाने, देय मात्र ॥२९॥

मागे वा ना मागे केह, पात्र वा अपात्र ।
इहार विचार नाहि जाने, देय मात्र ॥ २९ ॥

मागे—माँगता है; **वा**—अथवा; **ना**—नहीं; **मागे**—माँगता है; **केह**—कोई; **पात्र**—पात्र, योग्य; **वा**—अथवा; **अपात्र**—अपात्र; **इहार**—इसका; **विचार**—विचार; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानते; **देय**—देते हैं; **मात्र**—मात्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका विचार किये बिना ही भक्तिरूपी फल का वितरण किया कि कौन इसे माँगता है, कौन नहीं अथवा कौन उसको पाने का पात्र है और कौन कुपात्र।

तात्पर्य

चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन का यही सकल-सार है। इस संकीर्तन आन्दोलन को सुनने या इसमें भाग लेने का पात्र कौन है और कौन नहीं, इस प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता। अत: इसका प्रचार भेदभाव-रहित होकर करना चाहिए। संकीर्तन आन्दोलन के प्रचारकों का एकमात्र प्रयोजन बिना रुकावट के प्रचार-कार्य करना होना चाहिए। यही वह विधि है, जिसके द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु ने विश्व में इस संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात किया।

अञ्जलि अञ्जलि भरि' फेले चतुर्दिशे ।
दरिद्र कुड़ाञा खाय, मालाकार हासे ॥३०॥

अञ्जलि अञ्जलि भरि' फेले चतुर्दिशे ।
दरिद्र कुड़ाञा खाय, मालाकार हासे ॥ ३० ॥

अञ्जलि—मुट्ठी; **अञ्जलि**—मुट्ठी; **भरि'**—भरकर; **फेले**—बाँटते हैं; **चतुर्-दिशे**—चारों दिशाओं में; **दरिद्र**—निर्धन; **कुड़ाञा**—पकड़कर; **खाय**—खाते हैं; **माला-कार**—माली; **हासे**—मुस्कुराते हैं।

अनुवाद

दिव्य माली श्री चैतन्य महाप्रभु ने अंजुली में भर-भरकर सभी दिशाओं में फल बाँट दिये और जब गरीब, भूखे लोगों ने यह फल खाया, तो माली परम आनन्दित होकर मुस्कुराते रहे।

मालाकार कहे,—शुन, वृक्ष-परिवार ।
मूलशाखा-उपशाखा यतेक प्रकार ॥ ३१॥
मालाकार कहे,—शुन, वृक्ष-परिवार ।
मूलशाखा-उपशाखा यतेक प्रकार ॥ ३१॥

माला-कार—माली; **कहे**—कहा; **शुन**—सुनो; **वृक्ष-परिवार**—भक्ति के इस दिव्य वृक्ष का परिवार; **मूल-शाखा**—मुख्य शाखाएँ; **उपशाखा**—उपशाखाएँ; **यतेक**—बहुत; **प्रकार**—प्रकार।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति-वृक्ष की विभिन्न प्रकार की शाखाओं तथा उपशाखाओं को संबोधित किया :

अलौकिक वृक्ष करे सर्वेन्द्रिय-कर्म ।
स्थावर हइया धरे जङ्गमेर धर्म ॥ ३२॥
अलौकिक वृक्ष करे सर्वेन्द्रिय-कर्म ।
स्थावर हइया धरे जङ्गमेर धर्म ॥ ३२॥

अलौकिक—आध्यात्मिक; **वृक्ष**—वृक्ष; **करे**—करता है; **सर्व-इन्द्रिय**—सब इन्द्रियों का; **कर्म**—कर्म; **स्थावर**—जड़; **हइया**—होकर; **धरे**—स्वीकार करता है; **जङ्गमेर**—चलने-फिरने वाला; **धर्म**—कार्यकलाप।

अनुवाद

"चूँकि भक्ति-वृक्ष दिव्य होता है, अतएव इसका प्रत्येक अंग अन्य

सारे अंगों का कार्य सम्पन्न कर सकता है। यद्यपि वृक्ष अचर माना जाता है, किन्तु ऐसा होते हुए भी यह वृक्ष जंगम (चलने वाला) है।

तात्पर्य

भौतिक जगत् में हम सबका यह अनुभव है कि वृक्ष एक स्थान पर ही खड़े रहते हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में वृक्ष एक स्थान से दूसरे स्थान जा सकते हैं। इसलिए आध्यात्मिक जगत् की हर वस्तु *अलौकिक* अर्थात् दिव्य कहलाती है। ऐसे वृक्ष की अन्य विशेषता यह है कि यह व्यापक रूप से कार्य कर सकता है। भौतिक जगत् में वृक्ष की जड़ें पृथ्वी के अन्दर जाकर अपना भोजन एकत्र करती हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में वृक्ष के ऊपरी भाग की टहनियाँ तथा पत्तियाँ भी जड़ों का काम कर सकती हैं।

এ বৃক্ষের অঙ্গ হয় সব সচেতন ।
বাড়িয়া ব্যাপিল সবে সকল ভুবন ॥৩৩॥

ए वृक्षेर अङ्ग हय सब सचेतन ।
बाड़िया व्यापिल सबे सकल भुवन ॥ ३३॥

ए—यह; **वृक्षेर**—चैतन्य रूपी वृक्ष के; **अङ्ग**—भाग, अङ्ग; **हय**—हैं; **सब**—सब; **सचेतन**—चेतन; **बाड़िया**—बढ़ रहे; **व्यापिल**—आप्लावित; **सबे**—सारे भाग; **सकल**—सब; **भुवन**—जगत्।

अनुवाद

"इस वृक्ष के सारे अंग आध्यात्मिक रूप से सचेतन हैं और वे ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं त्यों-त्यों सारे जगत् में फैल जाते हैं।

একলা মালাকার আমি কাহাঁ কাহাঁ যাব ।
একলা বা কত ফল পাড়িয়া বিলাব ॥৩৪॥

एकला मालाकार आमि काहाँ काहाँ याब ।
एकला वा कत फल पाड़िया विलाब ॥ ३४॥

एकला—अकेला; **माला-कार**—माली; **आमि**—मैं हूँ; **काहाँ**—कहाँ; **काहाँ**—कहाँ; **याब**—मैं जाऊँ; **एकला**—अकेला; **वा**—अथवा; **कत**—कितने; **फल**—फल; **पाड़िया**—उठाकर; **विलाब**—बाँटूंगा।

अनुवाद

"मैं ही अकेला माली हूँ। मैं कितने स्थानों में जा सकता हूँ? मैं कितने फल तोड़ और बाँट सकता हूँ?

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु इंगित करते हैं कि हरे कृष्ण महामन्त्र का वितरण मिलकर करना चाहिए। यद्यपि वे पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर हैं, किन्तु वे शोक करते हैं, "मैं अकेले कैसे कार्य कर सकता हूँ? मैं अकेले कैसे फल तोड़कर सारे जगत् में वितरण कर सकता हूँ?" इससे संकेत मिलता है कि सभी श्रेणी के भक्तों को मिलकर देश-काल अथवा परिस्थिति का विचार किये बिना हरे कृष्ण महामन्त्र का वितरण करना चाहिए।

एकला उठाञा दिते हय परिश्रम ।
केह पाय, केह ना पाय, रहे मने भ्रम ॥ ३५॥

एकला उठाञा दिते हय परिश्रम ।
केह पाय, केह ना पाय, रहे मने भ्रम ॥ ३५॥

एकला—अकेला; **उठाञा**—उठाना; **दिते**—देना; **हय**—यह हो जाता है; **परिश्रम**—बहुत परिश्रम का; **केह**—कोई; **पाय**—पाता है; **केह**—कोई; **ना**—नहीं; **पाय**—पाता; **रहे**—रहता है; **मने**—मन में; **भ्रम**—भ्रम, आशंका।

अनुवाद

"अकेले फलों को तोड़कर उन्हें वितरित करना निश्चित ही अत्यधिक परिश्रम का कार्य है, परन्तु इतने पर भी मुझे सन्देह है कि कुछ लोग उन्हें प्राप्त कर पाएँगे और कुछ नहीं।

अतएव आमि आज्ञा दिलुँ सबाकारे ।
याँहा ताँहा प्रेम-फल देह' यारे तारे ॥ ३६॥

अतएव आमि आज्ञा दिलुँ सबाकारे ।
याँहा ताँहा प्रेम-फल देह' यारे तारे ॥ ३६॥

अतएव—अतएव; **आमि**—मैं; **आज्ञा**—आज्ञा; **दिलुँ**—देता हूँ; **सबाकारे**—हर एक

को; **याहाँ**—जहाँ कहीं; **ताहाँ**—हर जगह; **प्रेम-फल**—भगवत्-प्रेम का फल; **देह'**—बाँटो; **यारे**—किसी को भी; **तारे**—प्रत्येक को।

अनुवाद

"अतएव मैं इस ब्रह्माण्ड के हर व्यक्ति को आज्ञा देता हूँ कि वह इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को स्वीकार करे और इसे सर्वत्र वितरित करे।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित एक गीत है :

एनेछि औषधि माया नाशिबार लागि'
हरिनाम महामन्त्र लओ तुमि मागि'
भक्तिविनोद प्रभु-चरणे पड़िया
सेइ हरिनाम मन्त्र लइल मागिया॥

श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात माया के उस मोह को दूर करने के लिए किया, जिसके कारण इस भौतिक जगत् का हर व्यक्ति अपने आपको पदार्थ से उत्पन्न हुआ मानता है और इसलिए शरीर के प्रति अपने अनेक कर्तव्यों को निभाता है। वास्तव में जीव शरीर नहीं अपितु आत्मा है। उसे ज्ञान तथा आनन्द से सदैव पूर्ण होने की आध्यात्मिक आवश्यकता है, किन्तु दुर्भाग्यवश वह अपने आपको शरीर मान लेता है, जिससे कभी वह अपने आपको मनुष्य, कभी पशु, कभी वृक्ष, कभी जलचर तो कभी देवता इत्यादि के रूप में पाता है। इस तरह हर शरीर बदलने के साथ ही वह अलग प्रकार की चेतना विकसित करते हुए अलग प्रकार के कार्य करता है और इस तरह इस भौतिक संसार में अधिकाधिक फँसता जाता है और लगातार एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण करता रहता है। माया के वशीभूत होकर वह भूत या भविष्य पर विचार नहीं करता, केवल वर्तमान के अल्पकालिक जीवन से सन्तुष्ट रहता है। इस माया या मोह को दूर करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन आन्दोलन लाये हैं और वे हर एक से प्रार्थना करते हैं कि लोग इसे अंगीकार करके वितरित करें। जो व्यक्ति सचमुच ही श्री भक्तिविनोद ठाकुर का अनुयायी है, उसे चैतन्य महाप्रभु के इस निवेदन को तुरन्त स्वीकार करते हुए उनके चरणकमलों में नमस्कार करके हरे कृष्ण महामंत्र की याचना करनी

चाहिए। यदि कोई इतना भाग्यशाली हो कि महाप्रभु से हरे कृष्ण महामन्त्र की याचना कर सके तो उसका जीवन सफल हो जाए।

একলা মালাকার আমি কত ফল খাব ।
না দিয়া বা এই ফল আর কি করিব ॥৩৭॥

एकला मालाकार आमि कत फल खाब ।
ना दिया वा एइ फल आर कि करिब ॥ ३७॥

एकला—अकेला; **माला-कार**—माली; **आमि**—मैं; **कत**—कितने; **फल**—फल; **खाब**—खा लूँगा; **ना**—बिना; **दिया**—दिये; **वा**—अथवा; **एइ**—यह; **फल**—फल; **आर**—दूसरा; **कि**—क्या; **करिब**—मैं करूँगा।

अनुवाद

"मैं अकेला माली हूँ। यदि मैं इन्हें वितरित न करूँ तो मैं इनका क्या करूँगा? अकेले मैं कितने फल खा सकता हूँ?

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति के इतने फल उत्पन्न किये कि उन्हें सारे विश्व में वितरित कर देना जरूरी था; अन्यथा वे अकेले इतने सारे फलों को कैसे चख सकते थे और आस्वादन का आनन्द कैसे ले सकते थे? श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के अवतरित होने का मूल कारण था श्रीमती राधारानी के कृष्ण के प्रति प्रेम को समझना और उस प्रेम का आस्वादन करना। चूँकि भक्ति के वृक्ष के फल असंख्य थे, अतएव वे बिना किसी रोक-टोक के हर एक को बाँट देना चाहते थे। इसलिए श्रील रूप गोस्वामी लिखते हैं :

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुम् उन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अनेक अवतार पहले हो चुके हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के समान उदार, दयालु तथा वदान्य कोई न था, क्योंकि

उन्होंने भक्ति के सबसे रहस्यमय पक्ष—राधा-कृष्ण के माधुर्य प्रेम का वितरण किया। इसलिए श्री रूप गोस्वामी प्रभुपाद चाहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त भक्तों के हृदयों में निरन्तर वास करें, क्योंकि तभी वे श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के प्रेम-व्यापारों को समझ सकेंगे और उनका आस्वादन कर सकेंगे।

आत्म-इच्छामृते वृक्ष सिञ्चि निरन्तर ।
ताहाते असङ्ख्य फल वृक्षेर उपर ॥ ३८॥

आत्म-इच्छामृते वृक्ष सिञ्चि निरन्तर ।
ताहाते असङ्ख्य फल वृक्षेर उपर ॥ ३८ ॥

आत्म—स्वयं; **इच्छा-अमृते**—इच्छा रूपी अमृत से; **वृक्ष**—वृक्ष; **सिञ्चि**—सींचना; **निरन्तर**—निरन्तर; **ताहाते**—वहाँ; **असङ्ख्य**—असंख्य; **फल**—फल; **वृक्षेर**—वृक्ष के; **उपर**—ऊपरी भाग।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य इच्छा से सारे वृक्ष पर पानी छिड़का गया है और इस तरह भगवत्प्रेम के असंख्य फल लगे हैं।

तात्पर्य

ईश्वर असीम हैं और उनकी इच्छाएँ भी असीम हैं। अनन्त फलों का यह उदाहरण भौतिक सन्दर्भ में भी उपयुक्त है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इच्छा से इतने फल, अन्न तथा खाद्य पदार्थ उत्पन्न हो सकते हैं कि सारे लोग अपनी क्षमता से दस गुना अधिक खायें, तो भी वे समाप्त न हों। इस भौतिक जगत् में कृष्णभावना के सिवा अन्य किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। यदि लोग कृष्णभावनाभावित हो जाएँ, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य कृपा से इतना अधिक खाद्य पदार्थ उत्पन्न हो सकता है कि लोगों की सारी आर्थिक समस्याएँ दूर हो जाएँ। इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है। फल-फूल का उत्पादन हमारी इच्छा पर नहीं, अपितु परमेश्वर की परम इच्छा पर निर्भर करता है। यदि वे प्रसन्न रहें, तो पर्याप्त फल-फूल प्रदान कर सकते हैं, किन्तु यदि लोग नास्तिक तथा ईश्वरविहीन हैं, तो प्रकृति भगवान् की इच्छा से खाद्य पदार्थों की पूर्ति को सीमित कर देती है। उदाहरणार्थ, कभी-कभी कम

वर्षा होने से भारत के अनेक प्रान्तों में, विशेषतया महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश एवं अन्य निकटवर्ती राज्यों में खाद्य पदार्थों का घोर अभाव हो जाता है। इस विषय में तथाकथित विज्ञानी तथा अर्थशास्त्री कुछ भी नहीं कर सकते। अतएव सारी समस्याओं को हल करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि कृष्णभावनाभावित बनकर तथा भगवान् की नित्य भक्तिपूर्वक पूजा करके परमेश्वर की कृपा प्राप्त करने की चेष्टा करे।

অতএব সব ফল দেহ' যারে তারে ।
খাইয়া হউক্ লোক অজর অমরে ॥৩৯॥

अतएव सब फल देह' ग्यारे तारे ।
खाइया हउक् लोक अजर अमरे ॥ ३९ ॥

अतएव—अतएव; **सब**—सब; **फल**—फल; **देह'**—बाँटो; **ग्यारे तारे**—हर एक को; **खाइया**—खाना; **हउक्**—वे हों; **लोक**—सभी लोग; **अजर**—वृद्धावस्था रहित; **अमरे**—मृत्यु के बिना।

अनुवाद

"इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का वितरण सारे विश्व में करो, जिससे सारे लोग इन फलों को खाकर अन्ततः वृद्धावस्था तथा मृत्यु से मुक्त हो सकें।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा चलाया गया कृष्णभावनामृत आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जो इसे स्वीकार करता है, वह जन्म, मृत्यु तथा वृद्धावस्था से मुक्त होकर शाश्वत बन जाता है। लोग यह समझ नहीं पाते कि जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग, यही जीवन के चार असली क्लेश हैं। वे इतने मूर्ख हैं कि इन चारों क्लेशों के समक्ष घुटने टेक देते हैं, क्योंकि वे हरे कृष्ण महामन्त्र के दिव्य उपचार को नहीं जानते। केवल हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से सारे क्लेशों से छुटकारा पाया जा सकता है, किन्तु लोग माया के वशीभूत होकर इस आन्दोलन को गम्भीरता से स्वीकार नहीं करते। अतएव जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के वास्तविक सेवक हैं, उन्हें चाहिए कि मानव समाज के सर्वाधिक

लाभ के लिए इस आन्दोलन का विश्वभर में विस्तार करें। निस्सन्देह, पशु तथा निम्न योनियाँ इस आन्दोलन को समझने में असमर्थ हैं, किन्तु यदि कुछ ही मनुष्य इसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करें, तो उनके उच्च स्वर में कीर्तन से पशु, वृक्ष तथा अन्य निम्न योनियों सहित सारे जीव लाभान्वित होंगे। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से पूछा कि वे मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जीवों को कैसे लाभ पहुँचा सकते हैं, तो श्रील हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया कि हरे कृष्ण महामन्त्र इतना शक्तिशाली है कि यदि इसका उच्च स्वर से उच्चारण किया जाए, तो सबके सब इससे लाभान्वित होंगे, जिसमें निम्न योनियाँ भी सम्मिलित हैं।

জগদ্ব্যাপিয়া মোর হবে পুণ্য খ্যাতি ।
সুখী হইয়া লোক মোর গাহিবেক কীর্তি ॥৪০॥

जगत्व्यापिया मोर हबे पुण्य ख्याति ।
सुखी हइया लोक मोर गाहिबेक कीर्ति ॥ ४० ॥

जगत् व्यापिया—सारे संसार में प्रसार करते हुए; **मोर**—मेरा; **हबे**—होगा; **पुण्य**—पुण्य; **ख्याति**—प्रसिद्धि; **सुखी**—सुखी; **हइया**—होकर; **लोक**—सभी लोग; **मोर**—मेरा; **गाहिबेक**—महिमान्वित करेंगे; **कीर्ति**—यश।

अनुवाद

"यदि फलों को सारे विश्व में वितरित किया जाए, तो पुण्यात्मा के रूप में मेरी ख्याति सर्वत्र फैलेगी और सारे लोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मेरे नाम की महिमा का गान करेंगे।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की यह भविष्यवाणी अब सच हो रही है। भगवान् के पवित्र नाम, हरे कृष्ण महामन्त्र, के कीर्तन द्वारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विश्वभर में वितरण हो रहा है और जो लोग भ्रमपूर्ण अस्त-व्यस्त जीवन बिता रहे थे, वे अब दिव्य सुख का अनुभव कर रहे हैं। उन्हें संकीर्तन में शान्ति मिल रही है, अतएव वे इस आन्दोलन के परम लाभ को स्वीकार कर रहे हैं। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद है। उनकी भविष्यवाणी अब वास्तव में पूरी

हो रही है और जो लोग गम्भीर तथा विवेकशील हैं, वे इस महान् आन्दोलन के महत्त्व को समझ रहे हैं।

ভারত-ভূমিতে হৈল মনুষ্য জন্ম যার ।
জন্ম সার্থক করি' কর পর-উপকার ॥ ৪১ ॥

भारत-भूमिते हैल मनुष्य जन्म यार ।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥ ४१ ॥

भारत—भारत की; **भूमिते**—भूमि में; **हैल**—हुआ है; **मनुष्य**—मनुष्य; **जन्म**—जन्म; **यार**—जिसका; **जन्म**—ऐसा जन्म; **सार्थक**—सफल ; **करि'**—ऐसा करके; **कर**—करो; **पर**—दूसरों पर; **उपकार**—उपकार।

अनुवाद

"जिसने भारतभूमि (भारतवर्ष) में मनुष्य जन्म लिया है, उसे अपना जीवन सफल बनाना चाहिए और अन्य सारे लोगों के लाभ के लिए कार्य करना चाहिए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की उदारता इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्लोक में व्यक्त हुई है। यद्यपि वे बंगाल में जन्मे थे और बंगालियों का उनके प्रति विशेष कर्तव्य है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु केवल बंगालियों को ही नहीं, अपितु भारत के सारे निवासियों को सम्बोधित कर रहे हैं। भारतभूमि में ही वास्तविक मानव सभ्यता विकसित हो सकती है।

जैसाकि *वेदान्त-सूत्र* में कहा गया है, मानव जीवन विशेष रूप से भगवत्-साक्षात्कार के लिए है : *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।* जो भी भारतभूमि (*भारतवर्ष*) में जन्म लेता है, उसे यह विशेष अवसर प्राप्त है कि वह वैदिक सभ्यता के उपदेश तथा मार्गदर्शन का लाभ उठा सके। वह स्वत: आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्तों को पा लेता है, क्योंकि ९९.९ प्रतिशत भारतीय लोग, यहाँ तक कि गाँव के सीधे सादे किसान तथा अशिक्षित लोग भी आत्मा के देहान्तरण, विगत तथा भावी जीवन एवं ईश्वर में विश्वास करते हैं और स्वाभाविक रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् या उनके प्रतिनिधि की पूजा करना चाहते हैं। ये विचार

भारत में जन्म लेने वालों को स्वाभाविक रूप से उत्तराधिकार में मिलते हैं। भारत में अनेक पवित्र तीर्थस्थान हैं—जैसे गया, बनारस, मथुरा, प्रयाग, वृन्दावन, हरिद्वार, रामेश्वरम् तथा जगन्नाथ पुरी, और वहाँ आज भी लोग लाखों की संख्या में जाते हैं। यद्यपि भारत के वर्तमान नेता सामान्य जनता को ईश्वर, अगले जन्म, तथा पुण्य और पापमय जीवन के भेद में विश्वास न करने के लिए प्रेरित करते हैं और यद्यपि उन्हें शराब पीने, मांस खाने तथा तथाकथित रूप से सभ्य बनने की शिक्षा देते हैं, फिर भी लोग चार पापों से भयभीत रहते हैं—अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा जुआ। जब भी कोई धार्मिक उत्सव मनाया जाता है, तो लोग हजारों की संख्या में एकत्र होते हैं। हमें इसका वास्तविक अनुभव है। जब भी हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन कोई संकीर्तन-उत्सव कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद या हैदराबाद जैसे किसी बड़े शहर में मनाता है, तो सुनने के लिए हजारों लोग आते हैं। कभी-कभी हम अंग्रेजी में बोलते हैं, लेकिन अधिकांश लोग अंग्रेजी न समझने पर भी हमें सुनने आते हैं। जब भगवान् के नकली अवतार भी बोलते हैं, तो भी हजारों लोग एकत्र होते हैं, क्योंकि भारतभूमि में जन्मे हर व्यक्ति में सहज आध्यात्मिक प्रवृत्ति पाई जाती है और उसे आध्यात्मिक जीवन के मूल सिद्धान्त सिखलाये जाते हैं। उन्हें केवल वैदिक सिद्धान्तों के विषय में कुछ और अधिक बताये जाने की आवश्यकता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ कहते हैं—*जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार*—यदि भारतीयों को वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाए, तो वे समग्र जगत् के लिए सर्वाधिक उपयोगी, कल्याणकारी कार्य सम्पन्न कर सकने में समर्थ हैं।

आज कृष्णभावना या भगवद्भावना की कमी के कारण सारा जगत् अंधकार में है, क्योंकि यह जीवन चार प्रकार के पापों—मांसाहार, अवैध सम्बन्ध, जुआ तथा नशा—से ढका हुआ है। अतएव लोगों को इन पापकर्मों से दूर हटाने के लिए जोरदार प्रचार-कार्य की आवश्यकता है। इससे शान्ति तथा सम्पन्नता आयेगी; ठगों, चोरों और लंपटों की संख्या घटेगी और सारा मानव समाज भगवद्-भावनामय बनेगा।

हमारे द्वारा विश्वभर में कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रसार का व्यावहारिक

प्रभाव यह हुआ है कि सर्वाधिक पतित, लम्पट व्यक्ति भी उन्नत सन्त बन रहे हैं। यह विश्व के लिए केवल एक भारतीय का विनम्र सेवा-कार्य है। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशानुसार सारे भारतीय इस पथ का अनुसरण करते, तो भारत विश्व को एक अद्वितीय उपहार दे सकता था और इस तरह भारत महिमा चारों ओर फैलती। किन्तु भारत तो अब एक दरिद्रता से ग्रस्त देश माना जाता है और जब भी अमरीका या किसी अन्य अमीर देश का कोई व्यक्ति भारत आता है, तो उसे सड़कों के किनारे अनेक लोग लेटे हुए मिलते हैं, जिन्हें दो समय भरपेट भोजन भी नहीं मिल पाता। ऐसी भी संस्थाएँ हैं, जो इन गरीब लोगों के कल्याण के नाम पर सारे विश्व से धन तो एकत्र करती हैं, किन्तु उसे वे अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति के पीछे खर्च करते हैं। किन्तु अब श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार कृष्णभावनामृत आन्दोलन आरम्भ किया गया है और लोग इस आन्दोलन से लाभान्वित हो रहे हैं। अतएव अब भारत के अग्रणी व्यक्तियों का कर्तव्य है कि इस आन्दोलन की महत्ता को समझें और अनेक भारतीयों को प्रशिक्षित करके इस आन्देलन का प्रचार करने के लिए उन्हें भारत से बाहर भेजें। लोग इसे स्वीकार करेंगे, इससे भारतीयों तथा विश्व के अन्य लोगों में सहयोग बढ़ेगा और तब श्री चैतन्य महाप्रभु का उद्देश्य पूर्ण होगा। तब श्री चैतन्य महाप्रभु की कीर्ति सारे विश्व में फैलेगी और लोग न केवल इस जन्म में, अपितु अगले जन्म में भी स्वाभाविक रूप से सुखी, शान्त तथा समृद्ध होंगे, क्योंकि जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, जो कोई भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को समझता है, वह आसानी से जन्म-मरण के चक्र से छूट जायेगा, अर्थात् मोक्ष पा लेगा और भगवद्धाम वापस जायेगा। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु प्रत्येक भारतीय से आग्रह करते हैं कि वह दुनिया को भयावह गड़बड़ी से बचाने के लिए उनके आन्दोलन का प्रचारक बने।

यह केवल भारतीयों का ही नहीं, अपितु हर एक का कर्तव्य है और हमें अत्यधिक प्रसन्नता है कि अमरीकी तथा यूरोपीय बालक तथा बालिकाएँ हमारे इस आन्दोलन में गम्भीरतापूर्वक सहयोग कर रहे हैं। मनुष्य को यह निश्चित रूप से जान लेना होगा कि सारे मानव समाज के लिए सर्वोत्तम कल्याणकारी कार्य है, मनुष्य में भगवद्भावना या कृष्णभावना को जागृत करना। अतएव हर

व्यक्ति को इस महान् आन्दोलन में सहयोग करना चाहिए। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (१०.२२.३५) में की गई है, जो अगले श्लोक के रूप में दिया गया है।

एतावज्जन्म-साफल्यं देहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय-आचरणं सदा ॥ ४२॥

एतावज्जन्म-साफल्यं देहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय-आचरणं सदा ॥ ४२॥

एतावत्—यहाँ तक; **जन्म**—जन्म की; **साफल्यम्**—पूर्णता, सिद्धि; **देहिनाम्**—देहधारियों की; **इह**—इस संसार में; **देहिषु**—देहधारियों की ओर; **प्राणैः**—प्राणों से; **अर्थैः**—धन से; **धिया**—बुद्धि से; **वाचा**—वाणी से; **श्रेयः**—शाश्वत सौभाग्य; **आचरणम्**—वास्तव में कार्य करते हुए; **सदा**—सदा।

अनुवाद

"'यह हर जीव का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन, धन, बुद्धि, तथा वाणी से दूसरों के लाभ के लिए कल्याण-कार्य करे।'

तात्पर्य

सामान्य कार्य दो प्रकार के होते हैं—*श्रेयस्* अर्थात् ऐसे कार्य जिनका अन्तिम परिणाम लाभकारी तथा मंगलकारी होता है तथा *प्रेयस्* अर्थात् जो तुरन्त ही लाभकारी तथा मंगलकारी होते हैं। उदाहरणार्थ, बच्चों को खेलने का शौक होता है। वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल नहीं जाना चाहते और सोचते हैं कि अपने मित्रों के साथ रात-दिन खेलना ही उनके जीवन का लक्ष्य है। यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण के दिव्य जीवन में भी हम देखते हैं कि जब वे बालक थे, तो उन्हें अपने ही समवयस्क ग्वालबालों के साथ खेलना अत्यन्त प्रिय था। वे खाना खाने तक के लिए घर नहीं जाते थे। माता यशोदा को स्वयं वहाँ जाकर उन्हें घर लाने के लिए फुसलाना पड़ता था। अतएव यह बच्चे का स्वभाव है कि वह रात-दिन खेल में लगा रहता है और अपने स्वास्थ्य तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों की भी परवाह नहीं करता। यह *प्रेयस्* अर्थात् तुरन्त लाभकारी कार्यों का उदाहरण है। किन्तु कुछ कार्य *श्रेयस्* भी होते हैं, जो

अन्ततः मंगलप्रद होते हैं। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को भगवद्भावनामय होना चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि ईश्वर क्या हैं? यह भौतिक जगत् क्या है? वह कौन है और उनके परस्पर सम्बन्ध क्या हैं? यह *श्रेयस्* अर्थात् अन्ततः मंगलप्रद कार्य कहलाता है।

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में बतलाया गया है कि मनुष्य को *श्रेयस्* कार्य में रुचि रखनी चाहिए। *श्रेयस्* के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे अपना सर्वस्व—अपना जीवन, धन तथा वाणी—केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु दूसरों के लिए अर्पित कर देने चाहिए। किन्तु जब तक वह अपने निजी जीवन में *श्रेयस्* में रुचि नहीं लेगा, तब तक वह दूसरों को *श्रेयस्* का उपदेश नहीं दे सकता।

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उद्धृत यह श्लोक मनुष्यों पर लागू होता है, पशुओं पर नहीं। जैसाकि पिछले श्लोक में *मनुष्य-जन्म* शब्द से इंगित किया गया है, ये आदेश मनुष्यों के लिए है। दुर्भाग्यवश आज के लोग यद्यपि मानव-देह धारण किए हुए हैं, फिर भी आचरण में वे पशुओं से भी बदतर होते जा रहे हैं। यह आधुनिक शिक्षा का दोष है। आधुनिक शिक्षक मानव-जीवन के उद्देश्य को नहीं जानते; उन्हें इसी की चिन्ता रहती है कि वे अपने देश या मानव-समाज की आर्थिक दशा को कैसे उन्नत बनाएँ। यह भी आवश्यक है। वैदिक सभ्यता में तो मानव-जीवन के सारे पक्षों पर विचार किया गया है—इनमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सम्मिलित हैं। किन्तु मानवता की पहली आवश्यकता धर्म है। धार्मिक बनने के लिए मनुष्य को ईश्वर के आदेशों के अनुसार चलना होता है; किन्तु दुर्भाग्यवश इस युग के लोगों ने धर्म का तिरस्कार कर दिया है और वे आर्थिक उन्नति में लगे हुए हैं। अतएव धन पाने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। आर्थिक उन्नति के लिए येन-केन प्रकारेण धन प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। मनुष्य को केवल अपने शरीर तथा आत्मा को बनाये रखने भर के लिए धन कमाना चाहिए। किन्तु आधुनिक आर्थिक विकास, बिना किसी धार्मिक आधार के किया जा रहा है, अतएव लोग लालची, विषयी तथा धन के पीछे पागल बनते जा रहे हैं। वे केवल रजोगुण तथा तमोगुण को विकसित कर रहे हैं और प्रकृति के अन्य गुण—सत्त्वगुण

तथा ब्राह्मण-गुणों की उपेक्षा कर रहे हैं। इसीलिए सारा समाज अस्त-व्यस्त दशा में है।

भागवत के अनुसार बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है कि वह इस तरह कर्म करे कि मानव समाज जीवन के चरम लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सके। ऐसा ही श्लोक *विष्णु-पुराण* (३.१२.४५) में भी आता है, जो नीचे उद्धृत है।

प्राणिनामुपकारार्थ यदेवेह परत्र च ।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मति-मान्भजेत् ॥४३॥

प्राणिनामुपकाराय यदेवेह परत्र च ।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मति-मान्भजेत् ॥ ४३ ॥

प्राणिनाम्—सभी प्राणियों के; **उपकाराय**—लाभ के लिए; **यत्**—जो कोई; **एव**—निश्चित रूप से; **इह**—इस संसार में अथवा इस जीवन में; **परत्र**—अगले जीवन में; **च**—और; **कर्मणा**—कर्म से; **मनसा**—मन से; **वाचा**—वाणी से; **तत्**—वह; **एव**—निश्चय ही; **मति-मान्**—बुद्धिमान; **भजेत्**—कार्य करना चाहिए।

अनुवाद

'"बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कार्यों, विचारों तथा शब्दों से ऐसे कर्म करे, जो सारे प्राणियों के लिए इस जन्म में तथा अगले जन्म में मंगलकारी हो सकें।'

तात्पर्य

दुर्भाग्यवश सामान्य लोग यह नहीं जानते कि अगले जीवन में क्या होने वाला है। अपने आपको अगले जीवन के लिए तैयार करना सामान्य धारणा है और यह वैदिक सभ्यता का सिद्धान्त है, किन्तु आज के समय में विश्वभर में लोगों को अगले जीवन के बारे में विश्वास नहीं है। यहाँ तक कि बड़े-बड़े प्रभावशाली प्रोफेसर तथा अन्य शिक्षाविद् यह कहते हैं कि शरीर समाप्त होते ही सब कुछ समाप्त हो जाता है। यह नास्तिक दर्शन मानव-सभ्यता को खत्म कर रहा है। लोग मनमाने तौर पर सभी प्रकार के पापकर्म करते हैं और इस तरह मानव-जीवन का विशेषाधिकार तथाकथित नेताओं के शैक्षिक प्रचार-

कार्य से नष्ट होता जा रहा है। वास्तविकता तो यह है कि यह जीवन अगले जीवन की तैयारी के लिए है। विकास के क्रम में मनुष्य अनेक योनियों या रूपों से होकर गुजरा है और यह मनुष्य जीवन उसके लिए इससे श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करने का एक सुअवसर होता है। इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* (९.२५) में हुई है :

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।

"जो लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वे देवताओं के बीच जन्म लेंगे; जो भूतप्रेतों की पूजा करते हैं, वे ऐसे जीवों के बीच जन्म लेंगे; जो अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं, वे अपने पूर्वजों के बीच रहेंगे तथा जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ रहेंगे।" अतएव मनुष्य चाहे तो देवलोक जा सकता है, चाहे तो पितृलोक को जा सकता है, चाहे तो पृथ्वी लोक में रह सकता है या भगवद्धाम वापस जा सकता है। आगे इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (४.९) में भी हुई है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।* कृष्ण को तत्त्व से जानने वाला इस शरीर को त्यागने के बाद इस लोक में फिर से भौतिक शरीर धारण करने नहीं आता, किन्तु वह भगवद्धाम चला जाता है। शास्त्रों में यह ज्ञान उपलब्ध है और लोगों को इसे समझने का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि कोई एक जन्म में भगवद्धाम वापस नहीं जा पाता, तो वैदिक सभ्यता उसे यह अवसर प्रदान करती है कि वह ऊपर के लोक स्वर्ग को जाए, जहाँ पर देवता वास करते हैं और पुनः पशु-जीवन में पतित न हो। आज के लोग इस ज्ञान को महान् विज्ञान होते हुए भी नहीं समझते, क्योंकि वे अशिक्षित हैं और इसे न स्वीकार करने के लिए प्रशिक्षित किये जाते हैं। आधुनिक मानव समाज की ऐसी भयावह स्थिति है। फलतः कृष्णभावनामृत आन्दोलन ही एकमात्र आशा की किरण है, जो बुद्धिमान व्यक्तियों के ध्यान को जीवन के श्रेष्ठ लाभ की ओर आकृष्ट कर सकता है।

মালী মনুষ্য আমার নাহি রাজ্য-ধন ।
ফল-ফুল দিয়া করি' পুণ্য উপার্জন ॥৪৪॥

माली मनुष्य आमार नाहि राज्य-धन ।
फल-फुल दिया करि' पुण्य उपार्जन ॥ ४४ ॥

माली—माली; **मनुष्य**—मनुष्य; **आमार**—मेरा; **नाहि**—नहीं है; **राज्य**—राज्य; **धन**—धन; **फल**—फल; **फुल**—फूल; **दिया**—देना; **करि'**—करता हूँ; **पुण्य**—पुण्य; **उपार्जन**—कमाना।

अनुवाद

"मैं तो केवल माली हूँ। मेरे पास न तो साम्राज्य है, न बहुत सारा धन है। मेरे पास तो केवल कुछ फल और फूल हैं, जिनका उपयोग मैं अपने जीवन में पुण्य प्राप्त करने के लिए करना चाहता हूँ।

तात्पर्य

मानव-समाज के कल्याण-कार्यों के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं को किसी धनी व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, जो इस बात का द्योतक है कि मानवता के कल्याण-कार्य करने के लिए मनुष्य का धनी या ऐश्वर्यवान होना आवश्यक नहीं है। कभी-कभी धनी व्यक्तियों को इसका गर्व हो जाता है कि वे ही मानव-समाज के लिए कल्याणप्रद कार्य कर सकते हैं, अन्य लोग नहीं। इसका जीता-जागता उदाहरण यह है कि जब वर्षा के अभाव के कारण भारत में अकाल पड़ता है, तो धनी वर्ग के कुछ लोग सरकार की सहायता से बड़े आयोजन करके खाद्य सामग्री का वितरण बड़े ही गर्व के साथ करते हैं, मानो ऐसे कार्यों से ही लोगों को लाभ पहुँचाया जा सकता है। मान लीजिये कि अन्न न होता, तो फिर ये धनी लोग किस तरह अन्न वितरण करते? अन्न का उत्पादन पूरी तरह से ईश्वर के हाथ में है। यदि पानी न बरसे, तो अन्न की उपज नहीं होगी और ये तथाकथित धनी व्यक्ति तब लोगों में अन्न का वितरण नहीं कर सकेंगे।

अतएव जीवन का असली उद्देश्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न करना है। श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृतसिंधु* में कहा है कि भक्ति इतनी महान् है कि यह हर व्यक्ति के लिए लाभप्रद तथा मंगलप्रद है। चैतन्य महाप्रभु ने भी घोषणा की है कि मानव समाज में भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए किसी को बहुत धनी होना आवश्यक नहीं है। कोई भी जो इस कला को

जानता है, इसे कर सकता है और मानवता को सर्वोच्च लाभ दिला सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने आपको माली बताते हैं, जो स्वाभाविक रूप से अधिक धनी नहीं होता, किन्तु जिसके पास कुछ फल और फूल तो रहते ही हैं। कोई भी व्यक्ति कुछ फल-फूल एकत्र करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भक्तिमयी सेवा द्वारा प्रसन्न कर सकता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२६) में भगवान् संस्तुति करते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः।

भले ही मनुष्य अपनी सम्पत्ति, धन या ऐश्वर्य से भगवान् को प्रसन्न न कर पाये, किन्तु कोई भी व्यक्ति कुछ फल या फूल एकत्र करके उन्हें भगवान् को अर्पित कर सकता है। भगवान् कहते हैं कि यदि कोई भक्तिपूर्वक ऐसी भेंट लाता है, तो वे उसे स्वीकार करते हैं और खाते हैं। जब कृष्ण खाते हैं, तो सारा विश्व सन्तुष्ट होता है। *महाभारत* में एक कथा है कि किस प्रकार कृष्ण के भोजन करने से दुर्वासा मुनि के साठ हजार शिष्य तुष्ट हो गये। अतएव यह तथ्य है कि यदि हम अपने प्राणों से (*प्राणैः*), अपने धन से (*अर्थैः*), अपनी बुद्धि से (*धिया*) या अपनी वाणी से (*वाचा*) पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रसन्न कर सकें, तो सारा संसार स्वतः सुखी हो जायेगा। इसलिए हमारा मुख्य कर्तव्य यह है कि हम अपने कार्यों, अपने धन, तथा अपने शब्दों से परमेश्वर को प्रसन्न करें। यह बहुत ही सरल है। भले ही किसी के पास धन न रहे, वह हर एक को हरे कृष्ण मन्त्र का उपदेश दे सकता है। वह घर-घर जाकर हर एक से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने का अनुरोध कर सकता है। इस तरह सारे विश्व की स्थिति सुखमय तथा शान्तिपूर्ण हो सकेगी।

माली हञा वृक्ष हइलाँ एइ त' इच्छाते ।
सर्व-प्राणीर उपकार हय वृक्ष हैते ॥ ४५ ॥

माली हञा वृक्ष हइलाँ एइ त' इच्छाते ।
सर्व-प्राणीर उपकार हय वृक्ष हैते ॥ ४५ ॥

माली हञा—यद्यपि मैं माली हूँ; **वृक्ष हइलाँ**—मैं वृक्ष भी हूँ; **एइ त'**—यह है;

इच्छाते—मेरी इच्छा से; **सर्व-प्राणीर**—सभी प्राणियों का; **उपकार**—उपकार; **हय**—है; **वृक्ष**—वृक्ष; **हैते**—से।

अनुवाद

"यद्यपि मैं माली का कार्य कर रहा हूँ, किन्तु मैं वृक्ष भी बनना चाहता हूँ, क्योंकि इस तरह मैं सबको लाभ पहुँचा सकता हूँ।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु मानव-समाज के सर्वाधिक कल्याणकारी पुरुष हैं, क्योंकि लोगों को सुखी बनाना ही उनकी एकमात्र अभिलाषा है। उनका संकीर्तन आन्दोलन लोगों को सुखी बनाने के विशेष उद्देश्य के लिए ही है। वे स्वयं वृक्ष बनना चाह रहे थे, क्योंकि वृक्ष सबसे उपकारी जीव माना जाता है। अगले श्लोक में, जो *श्रीमद्भागवत* (१०.२२.३३) से है, स्वयं कृष्ण ने वृक्ष के अस्तित्व की अत्यधिक प्रशंसा की है।

अहो एषां वरं जन्म सर्व-प्राण्युपजीविनाम् ।
सु-जनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥ ४६॥

अहो एषां वरं जन्म सर्व-प्राण्युपजीविनाम् ।
सु-जनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥ ४६ ॥

अहो—ओह, जरा देखो; **एषाम्**—इन वृक्षों का; **वरम्**—श्रेष्ठ; **जन्म**—जन्म; **सर्व**—सभी; **प्राणि**—प्राणी; **उपजीविनाम्**—पोषण देनेवाले का; **सु-जनस्य इव**—महापुरुषों की भाँति; **येषाम्**—जिनसे; **वै**—निश्चित रूप से; **विमुखाः**—निराश; **यान्ति**—चला जाता है; **न**—नहीं; **अर्थिनः**—जो कुछ माँगता है।

अनुवाद

"'जरा देखो तो! ये वृक्ष किस तरह हर जीव का पालन कर रहे हैं। इनका जन्म सफल है। इनका आचरण महापुरुषों जैसा है, क्योंकि जो कोई भी वृक्ष से कुछ माँगता है, वह कभी निराश होकर नहीं जाता।'"

तात्पर्य

वैदिक सभ्यता के अनुसार क्षत्रियों को महान् पुरुष माना जाता है, क्योंकि यदि कोई मनुष्य क्षत्रिय राजा के पास जाता है और दान माँगता है, तो राजा कभी मना नहीं करेगा। वृक्षों की तुलना ऐसे ही नेक क्षत्रियों से की जाती है,

क्योंकि वृक्षों से सब लोग सभी तरह के लाभ उठाते हैं—कोई फल लेता है, कोई फूल लेता है, तो कोई पत्ती या टहनी लेता है और कुछ लोग वृक्ष को काटते भी हैं, किन्तु फिर भी वृक्ष बेहिचक सभी को दान देता है।

बिना सोचे-विचारे अनावश्यक रूप से वृक्ष काटना मनुष्य की लम्पटता का दूसरा उदाहरण है। कागज उद्योग के लिए लाखों वृक्ष काटे जाते हैं और उस कागज से मानव समाज के तरंगी सन्तोष के लिए कूड़ा साहित्य छापा जाता है। दुर्भाग्यवश ऐसे उद्योगपति अपने औद्योगिक विकास के कारण इस जीवन में तो प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु उन्हें इसका पता नहीं रहता कि उन पर इन जीवों को मारने का आरोप लगेगा, जो अभी वृक्ष के रूप में हैं।

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का है, जिसे कृष्ण ने अपने सखाओं से उस समय कहा था, जब वे गोपियों का चीरहरण (*वस्त्रहरण लीला*) करके एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। इस श्लोक को उद्धृत करके श्री चैतन्य महाप्रभु हमें यह शिक्षा देते हैं कि हमें वृक्षों के समान सहिष्णु और उपयोगी होना चाहिए, जो अपनी शरण में आने वाले जरूरतमन्द व्यक्तियों को हर वस्तु प्रदान करते हैं। जरूरतमन्द व्यक्ति वृक्षों से तथा पशुओं से भी अनेक लाभ उठा सकता है, किन्तु आधुनिक सभ्यता में लोग इतने कृतघ्न हो चुके हैं कि वे वृक्षों तथा पशुओं का शोषण करके उनका वध कर देते हैं। ये आधुनिक सभ्यता के कुछ पापकर्म हैं।

এই আজ্ঞা কৈল যদি চৈতন্য-মালাকার ।
পরম আনন্দ পাইল বৃক্ষ-পরিবার ॥ ৪৭ ॥
एइ आज्ञा कैल यदि चैतन्य-मालाकार ।
परम आनन्द पाइल वृक्ष-परिवार ॥ ४७ ॥

एइ—यह; **आज्ञा**—आज्ञा; **कैल**—दी; **यदि**—जब; **चैतन्य**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **माला-कार**—माली के रूप में; **परम**—परम; **आनन्द**—आनन्द; **पाइल**—पाया; **वृक्ष**—वृक्ष का; **परिवार**—परिवार।

अनुवाद

वृक्ष के वंशज (श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त) महाप्रभु से यह प्रत्यक्ष आदेश पाकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है कि ५०० वर्ष पूर्व नवद्वीप में संकीर्तन आन्दोलन के परोपकारी कार्यों का जो सूत्रपात किया गया था, वह सारे मनुष्यों के हित में सारे विश्व में फैले। दुर्भाग्यवश चैतन्य महाप्रभु के ऐसे अनेक तथाकथित अनुयायी हैं, जो मन्दिर बनवाने, अर्चाविग्रहों का प्रदर्शन करने, कुछ धन एकत्र करने तथा उसका उपयोग खाने और सोने के लिए करने में ही सन्तुष्ट रहते हैं। उनके द्वारा संसार-भर में श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के प्रचार का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु ऐसा करने में अक्षम होते हुए भी यदि कोई अन्य व्यक्ति उसे करता है, तो वे ईर्ष्या करते हैं। यह स्थिति है महाप्रभु के आधुनिक अनुयायियों की। कलियुग इतना प्रबल है कि इससे महाप्रभु के तथाकथित अनुयायी भी प्रभावित हो जाते हैं। कम-से-कम महाप्रभु के अनुयायियों को भारत से बाहर जाकर उनके सम्प्रदाय का विश्वभर में प्रचार करना चाहिए, क्योंकि यही चैतन्य महाप्रभु का उद्देश्य है। चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों को जी-जान से उनकी इच्छा पूरी करने के लिए वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु और रास्ते में पड़े तिनके से भी अधिक विनीत बनना चाहिए।

যেই যাহাঁ তাহাঁ দান করে প্রেম-ফল ।
ফলাস্বাদে মত্ত লোক হইল সকল ॥ ৪৮॥

য়েই য়াহাঁ তাহাঁ দান করে প্রেম-ফল ।
ফলাস্বাদে মত্ত লোক হইল সকল ॥ ৪৮ ॥

য়েই—कोई भी; **য়াহাঁ**—जहाँ कहीं; **তাহাঁ**—कहीं भी; **দান**—दान; **করে**—देता है; **প্রেম-ফল**—भगवत्-प्रेम का फल; **ফল**—फल; **আস্বাদে**—आस्वादन करके; **মত্ত**—उन्मत्त होकर; **লোক**—लोग; **হইল**—हो जाते हैं; **সকল**—सभी।

अनुवाद

भगवत्प्रेम का फल इतना स्वादिष्ट होता है कि भक्त इसको जहाँ कहीं भी बाँटता है, विश्वभर में कहीं भी, जो इस फल का आस्वादन करता है, वह तुरन्त मदमस्त हो उठता है।

तात्पर्य

यहाँ पर महाप्रभु द्वारा वितरित किये गये अद्‌भुत फल का वर्णन हुआ है। हमें इसका व्यावहारिक अनुभव है कि जो इस फल को ग्रहण करता है और उसे सच्चे मन से चखता है, वह इसके पीछे तुरन्त दीवाना हो जाता है और महाप्रभु के उपहार हरे कृष्ण महामन्त्र से मदोन्मत्त होकर अपनी सारी बुरी आदतें छोड़ देता है। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* की सारी उक्तियाँ इतनी व्यावहारिक हैं कि कोई भी इनको परख सकता है। जहाँ तक हमारी बात है, हम तो भगवत्प्रेम के महान् फल को महामन्त्र—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—के कीर्तन के माध्यम से वितरित करने की सफलता के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हैं।

महा-मादक प्रेम-फल पेट भरि' खाय ।
मातिल सकल लोक—हासे, नाचे, गाय ॥ ४९ ॥

महा-मादक प्रेम-फल पेट भरि' खाय ।
मातिल सकल लोक——हासे, नाचे, गाय ॥ ४९ ॥

महा-मादक—अत्यधिक नशेवाला; **प्रेम-फल**—भगवत्प्रेम का यह फल; **पेट**—पेट; **भरि'**—भरकर; **खाय**—खाने दो; **मातिल**—पागल हो गये; **सकल लोक**—सभी सामान्य लोग; **हासे**—हँसते हैं; **नाचे**—नाचते हैं; **गाय**—गाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा वितरित भगवत्प्रेम रूपी फल इतना मादक है कि जो भी पेट भर खाता है, वह तुरन्त ही उससे उन्मत्त हो उठता है और स्वतः ही कीर्तन करता, नाचता, हँसता और आनन्द लेता है।

केह गड़ागड़ि याय, केह त' हुङ्कार ।
देखि' आनन्दित हञा हासे मालाकार ॥ ५० ॥

केह गड़ागड़ि याय, केह त' हुङ्कार ।
देखि' आनन्दित हञा हासे मालाकार ॥ ५० ॥

केह—उनमें से कुछ; **गड़ागड़ि याय**—भूमि पर लेटते हैं; **केह**—उनमें से कुछ; **त'**—

निश्चित रूप से; **हुङ्कार**—जोर से चिल्लाते हैं; **देखि'**—यह देखकर; **आनन्दित**—प्रसन्न होकर; **हञा**—होकर; **हासे**—हँसते हैं; **माला-कार**—महान् माली।

अनुवाद

जब महान् माली श्री चैतन्य महाप्रभु देखते हैं कि लोग कीर्तन करते हैं, नाचते और हँसते हैं और कुछ लोग भूमि पर लोटपोट होते हैं तथा कुछ हुंकार भरते हैं, तो वे परम आनन्दित होकर मुस्कुराते हैं।

तात्पर्य

कृष्णभावनामृत के हरे कृष्ण आन्दोलन में लगे हुए लोगों के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु का यह मनोभाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हम इस्कॉन संस्थान के प्रत्येक केन्द्र में हर रविवार के दिन एक प्रीति-भोज का आयोजन करते हैं और जब हम वास्तव में देखते हैं कि लोग हमारे केन्द्र में आते हैं, कीर्तन करते हैं, नाचते हैं, प्रसाद ग्रहण करते हैं, हर्षित होते हैं और पुस्तकें खरीदते हैं, तो हमें विश्वास हो जाता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसे दिव्य कार्यों में सदैव उपस्थित रहते हैं और वे इससे अत्यन्त प्रसन्न तथा तुष्ट हो रहे हैं। अतएव इस्कॉन के सदस्यों को सिद्धान्तों के अनुसार इस आन्दोलन को अधिकाधिक बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु प्रसन्न होकर मुस्काते हुए अपनी कृपादृष्टि डालेंगे और यह आन्दोलन सफल होगा।

एই মালাকার খায় এই প্রেম-ফল ।
নিরবধি মত্ত রহে, বিবশ-বিহ্বল ॥ ৫১ ॥

एइ मालाकार खाय एइ प्रेम-फल ।
निरवधि मत्त रहे, विवश-विह्वल ॥ ५१ ॥

एइ—यह; **माला-कार**—महान् माली; **खाय**—खाते हैं; **एइ**—यह; **प्रेम-फल**—भगवत्प्रेम का फल; **निरवधि**—सदा; **मत्त**—उन्मत्त होकर; **रहे**—रहते हैं; **विवश**—जैसे असहाय; **विह्वल**—जैसे मोहग्रस्त।

अनुवाद

यह महान् माली, श्री चैतन्य महाप्रभु, स्वयं इस फल को खाते हैं; फलस्वरूप वे निरन्तर उन्मत्त रहते हैं, मानों असहाय एवं मोहग्रस्त हों।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का कार्य ही है कि अपने आचरण द्वारा लोगों को शिक्षा दी जाए। वे कहते हैं—*आपनी आचरि 'भक्ति करिल प्रचार* (*चैतन्य चरितामृत, आदि* ४.४१)। मनुष्य को सर्वप्रथम स्वयं आचरण करना चाहिए, तब शिक्षा देनी चाहिए। असली शिक्षक का यही कार्य है। कोई जिस सिद्धान्त का प्रचार कर रहा है, जब तक वह स्वयं उसे नहीं समझता, तब तक उसका प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव मनुष्य को न केवल चैतन्य-सम्प्रदाय के दर्शन को समझना होगा, अपितु अपने जीवन में उसे उतारना भी होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते करते कभी-कभी मूर्च्छित हो जाते थे और घंटों बेहोश पड़े रहते थे। *शिक्षाष्टक* (७) में उनकी प्रार्थना है :

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द-विरहेण मे॥

"हे गोविन्द! आपके विरह में मुझे एक क्षण बारह वर्ष या इससे भी अधिक लगता है। मेरी आँखों से वर्षा की बौछारों के समान अश्रु की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं और आपकी अनुपस्थिति में मुझे यह जगत् बिल्कुल शून्य लगता है।" यह पूर्ण अवस्था है, जो हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने तथा भगवत्प्रेम रूपी फल के खाने से मिलती है, जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिखलाया है। मनुष्य को इस अवस्था की कृत्रिम रूप से नकल नहीं करनी चाहिए, किन्तु यदि वह गम्भीर है और नियमों का निष्ठा से पालन करता है और हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करता है, तो वह घड़ी आयेगी जब ये लक्षण प्रकट होंगे। उसकी आँखें अश्रुपूरित हो उठेंगी, वह महामन्त्र का ठीक से उच्चारण नहीं कर सकेगा और भावावेश में उसका हृदय स्पन्दित हो उठेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि इसकी नकल नहीं करनी चाहिए, अपितु भक्त को ऐसी कामना करनी चाहिए कि वह दिन आये, जब ऐसी समाधि के लक्षण उसके शरीर में स्वत: प्रकट हों।

सर्व-लोके मत्त कैला आपन-समान ।
प्रेमे मत्त लोक विना नाहि देखि आन ॥५२॥

सर्व-लोके मत्त कैला आपन-समान ।
प्रेमे मत्त लोक विना नाहि देखि आन ॥५२॥

सर्व-लोके—सभी लोग; **मत्त**—उन्मत्त; **कैला**—उन्होंने किया; **आपन**—स्वयं को; **समान**—समान; **प्रेमे**—भगवत्प्रेम में; **मत्त**—उन्मत्त; **लोक**—सामान्य लोग; **विना**—बिना; **नाहि**—नहीं; **देखि**—हम देखते हैं; **आन**—और कुछ।

अनुवाद

महाप्रभु ने अपने संकीर्तन आन्दोलन से हर एक को अपनी तरह मत्त बना दिया। हमें ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं मिलता, जो उनके संकीर्तन आन्दोलन द्वारा मदमस्त न हो उठा हो।

যে যে পূর্বে নিন্দা কৈল, বলি' মাতোয়াল ।
সেহো ফল খায়, নাচে, বলে—ভাল ভাল ॥৫৩॥

যে যে পূর্বে নিন্দা কৈল, বলি' মাতোয়াল ।
সেহো ফল খায়, নাচে, বলে—ভাল ভাল ॥৫৩॥

যে যে—जो व्यक्ति; **পূর্বে**—पहले; **নিন্দা**—निन्दा; **কৈল**—करते थे; **বলি'**—कहकर; **মাতোয়াল**—शराबी; **সেহো**—वही लोग; **ফল**—फल; **খায়**—खाते हैं; **নাচে**—नाचते हैं; **বলে**—बोलते हैं; **ভাল ভাল**—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

अनुवाद

जिन लोगों ने पहले श्री चैतन्य महाप्रभु को शराबी कहकर उनकी आलोचना की थी, उन्होंने भी फल खाया और वे, "बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!" कहकर नाचने लगे।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आन्दोलन प्रारम्भ किया, तो मायावादियों, नास्तिकों तथा मूर्खों ने अनावश्यक रूप से उनकी भी आलोचना की थी। अत: स्वाभाविक है कि ऐसे लोग हमारी भी आलोचना की है। ऐसे लोग सदैव रहेंगे और वे सदैव ऐसी हर बात की आलोचना करते रहेंगे, जो मानव समाज के लिए असल में उत्तम है; किन्तु संकीर्तन आन्दोलन के प्रचारकों को ऐसी आलोचना से घबराना नहीं चाहिए। ऐसे मूर्खों को आमंत्रित करना

चाहिए और प्रसाद-ग्रहण करने तथा अपने साथ कीर्तन करने और नाचने के लिए कहना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे उन्हें बदल देना चाहिए। यही हमारी नीति होनी चाहिए। हाँ, जो हमारे साथ आना चाहता हो, उसे निष्ठावान तथा जीवन के आध्यात्मिक विकास के प्रति गम्भीर होना चाहिए। तभी ऐसा व्यक्ति हमारे साथ मात्र कीर्तन करके, नाचकर और प्रसाद ग्रहण करके थोड़े समय के बाद यह कहने लगेगा कि यह आन्दोलन बहुत ही उत्तम है। किन्तु जो व्यक्ति भौतिक लाभ या निजी तृप्ति के निम्न आशय के साथ सम्मिलित होना चाहता है, वह कभी भी इस आन्दोलन के दर्शन को हृदयंगम नहीं कर सकेगा।

এই ত' কহিলুঁ প্রেম-ফল-বিতরণ ।
এবে শুন, ফল-দাতা যে যে শাখা-গণ ॥৫৪॥

এइ ত' কহিলুঁ প্রেম-ফল-বিতরণ ।
এবে শুন, ফল-দাতা য়ে য়ে শাখা-গণ ॥৫৪॥

এइ—यह; **ত'**—फिर भी; **কহিলুঁ**—मैंने व्याख्या की है; **প্রেম-ফল**—भगवत्-प्रेम के फल की; **বিতরণ**—वितरण, बाँटने; **এবে**—अब; **শুন**—सुनो; **ফল-দাতা**—फलदाता; **য়ে য়ে**—जो जो; **শাখা-গণ**—शाखाएँ।

अनुवाद

महाप्रभु द्वारा भगवत्प्रेम रूपी फल के वितरण का वर्णन करने के बाद अब मैं चैतन्य महाप्रभु रूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाओं का वर्णन करना चाहूँगा।

শ্রী-রূপ-রঘুনাথ-পদে যার আশ ।
চৈতন্য-চরিতামৃত কহে কৃষ্ণদাস ॥৫৫॥

শ্রী-রূপ-রঘুনাথ-পদে য়ার আশ ।
চৈতন্য-চরিতামৃত কহে কৃষ্ণদাস ॥৫৫॥

শ্রী-রূপ—श्रील रूप गोस्वामी; **রঘুনাথ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **পদে**—के चरणकमलों में; **য়ার**—जिनकी; **আশ**—आशा; **চৈতন্য-চরিতামৃত**—*चैतन्य-चरितामृत* नामक ग्रंथ; **কহে**—वर्णन करता हूँ; **কৃষ্ণ-দাস**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत आदिलीला के नवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें भक्तिरूपी कल्प-वृक्ष का वर्णन है।